विवेक-ज्योति

वर्ष ५० अंक २ फरवरी २०१२

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

फरवरी २०१२

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ५०
अंक २

वार्षिक ६०/– **एक प्रति ८/–**

५ वर्षों के लिये – रु. २७५/-
आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि स्पीडपोस्ट मनिआर्डर से भेजें अथवा बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक ९०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ४००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, २२२४११९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

प्रिंट आर्डर - २२,७५०

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। उसके बाद अंक उपलब्ध रहने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

लेखकों से निवेदन

रचना भेजते समय निम्न बातों पर ध्यान दें –

(१) धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा किसी भी जीवनोपयोगी विषयक रचना को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।

(२) रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिक-से-अधिक चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हो। भेजने के पूर्व एक बार स्वयं अवश्य पढ़ लें।

(३) लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।

(४) आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।

(५) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ कवितायें इतनी संख्या में आती हैं कि उनका प्राप्ति-संवाद देना सम्भव नहीं होता। स्वीकृत होने पर भी उसके प्रकाशन में ६-८ महीने तक लग सकते हैं।

(६) अनुवादित रचनाओं के मूल स्रोत का पूरा विवरण दिया जाय तथा उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न की जाय।

(७) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त मतों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा।

(८) 'विवेक-ज्योति' के लिये भेजी जा रही रचना यदि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र प्रकाशित हो चुकी हो या प्रकाशनार्थ भेजी जा रही हो, तो उसका भी उल्लेख अवश्य करें। वैसे इसमें मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है।

वर्ष ५० फरवरी २०१२ अंक २

पुरखों की थाती

आयुशः क्षण एकोऽपि सर्वरत्नैर्न लभ्यते ।
नीयते स वृथा येन प्रमादः सुमहानहो ।।२९।।

– संसार के सारे मूल्यवान रत्नों को देकर भी उसके बदले में आयु का एक क्षण भी नहीं पाया जा सकता। ऐसे जीवन को जो व्यर्थ ही गँवा देता है, वह सचमुच ही महान् प्रमादी है।

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेव-नमस्कारः केशवं प्रति-गच्छति ।।३०।।

– जैसे आकाश से गिरा हुआ सारा जल नदी-नालों से होता हुआ समुद्र में जा पहुँचता है, वैसे ही सभी देवताओं के प्रति किया हुआ नमस्कार भगवान विष्णु के पास जा पहुँचता है।

आदित्य-चन्द्रावनलानिलौ च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ।।

– सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, भूमि, जल, हृदय (अन्तरात्मा), यम, दिन-रात, प्रात: तथा संध्या और धर्म – ये सभी प्रत्येक मनुष्य के कार्यों को जानते हैं। (महाभारत)

आदौ राम-तपोवनादि-गमनं हत्वा मृगं काञ्चनम्
वैदेही-हरणं जटायु-मरणम् सुग्रीव-संभाषणम् ।।
वाली-निर्दलनं समुद्र-तरणं लङ्कापुरी-दाहनम्
पश्चाद्रावण-कुम्भकर्ण-हननं एतद्धि-रामायणम् ।। ३२

– प्रारम्भ में श्रीरामचन्द्र ने तपोवन आदि की यात्रा की, वहाँ उन्होंने स्वर्णमृग का वध किया; तदुपरान्त श्री सीताजी का अपहरण हुआ, उनकी रक्षा के प्रयास में गीधराज जटायु की मृत्यु हुई; फिर सुग्रीव से परिचय हुआ और बालि का दलन हुआ; तदुपरान्त (हनुमानजी ने) समुद्र को पार करके लंकापुरी को जलाया; तत्पश्चात् रावण-कुम्भकर्ण आदि का वध हुआ – बस यही तो सम्पूर्ण रामायण की कथा है।

आत्मनः परितोषाय कवेः काव्यं तथापि तत् ।
स्वामिनो देहलीदीपसमं अन्योपकारकम् ।।३३।।

– जैसे द्वार पर रखा हुआ दीपक घर के भीतर और बाहर – दोनों ओर प्रकाश देता है, वैसे ही कवि भी अपने स्वयं के आनन्द के लिये काव्य की रचना करता है, परन्तु उसका रसास्वादन करके अन्य लोगों का भी उपकार होता है।

आपातरम्या विषयाः पर्यन्त-परितापिनः ।।३४।।

– इन्द्रियों के भोग्य विषय ऊपर से मनमोहक लगते हैं, परन्तु परिणाम में दुखदायी होते हैं।

आपदि मित्र परीक्षा शूर परीक्षा रण अंगणे भवति ।
विनये वंश परीक्षा शील परीक्षा धनक्षये भवति ।।३५।।

– विपत्ति पड़ने पर मित्र की परीक्षा होती है, युद्धक्षेत्र में शूर-वीर की परीक्षा होती है, विनयशीलता देखकर कुल की परीक्षा होती है और निर्धन हो जाने पर शील-स्वभाव की परीक्षा होती है।

आदौ देवकि-देवगर्भ-जननं गोपीगृहे वर्धनम्
माया-पुतन-जीवितापहरणं गोवर्धनोद्धारणम् ।
कंसच्छेदन-कौरवादि-हननं कुन्तीतनूजावनम्
एतद्भागवतं पुराण-कथितं श्रीकृष्ण-लीलामृतम् ।।३६।।

– श्रीमद्-भागवत पुराण में वर्णित श्रीकृष्ण का लीलामृत बस इतना ही तो है – पहले उन्होंने माता देवकी की कोख से जन्म लिया, उसके बाद वे यशोदा के पुत्र के रूप में बड़े हुए, वहाँ मायाविनी पूतना के जीवन का हरण किया। इसके बाद उन्होंने इन्द्र के कोप से रक्षा हेतु गोवर्धन धारण किया, तदुपरान्त कंस का वध किया, फिर कुन्ती के पुत्रों की रक्षा करते हुए कौरवों का नाश कराया।

❖ (क्रमशः) ❖

श्रीरामकृष्ण-वन्दना

– १ –

(मिश्र भैरवी-कहरवा)

हे रामकृष्ण करुणावतार , माया से अपनी लो उबार ।
शरणागत सौंप रहा तुमको
इहलोक और परलोक भार ।। हे रामकृष्ण. ।।

ना है मेरे जप-तप विराग, अन्तर में पूरित द्वेष-राग ।
बस इतना ही स्वीकार करो,
कतिपय शब्दों का पुष्पहार ।। हे रामकृष्ण. ।।

देकर चरणों की धूलिकणा, अपना लो अपना यंत्र बना ।
देखो पग विचलित होवे ना,
मेरे जीवन के कर्णधार ।। हे रामकृष्ण. ।।

विस्मरण तुम्हारा ना होवे, तव नामरत्न भी ना खोवे ।
निज पादपद्म की नौका में,
इस भवसागर से करो पार ।। हे रामकृष्ण. ।।

सब त्याग शरण में आया हूँ, चरणों में मधुप लुभाया हूँ ।
अब तो 'विदेह' यह बोध हुआ,
तुम जग-जीवन के परम सार ।। हे रामकृष्ण. ।।

– २ –

(जैजैवन्ती-तीनताल)

रामकृष्ण भजिए, साधो, रामकृष्ण भजिए ।
यह संसार असार दोषमय, ना इसमें मजिए ।।

विषय-भोग की झूठी आशा,
सुख-सम्पद की अमिट पिपासा,
बन्धन सारे इस जीवन के, तृण समान तजिए ।। साधो. ।।

अन्तर का आनन्दराशि तज,
बिसराकर सच्चित् स्वरूप निज,
ठोकर खाते पग-पग पर नित, क्यों इस भाँति जिए ।। साधो. ।।

आए दीनबन्धु करुणामय,
हरते शोक मोह भय संशय,
लेकर शरण चरण-शतदल की, नित 'विदेह' भजिए ।। साधो. ।।

वराहनगर मठ और भारत-भ्रमण

स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी ने अपनी आत्मकथा नहीं लिखी, तथापि उनके स्वयं के पत्रों तथा व्याख्यानों और उनके गुरुभाइयों के संस्मरणों में यत्र-तत्र उनके अपने जीवन-विषयक बातें आ गयी हैं। उनकी ऐसी ही उक्तियों का एक संकलन कोलकाता के अद्वैताश्रम द्वारा 'Swami Vivekananda on Himself' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ है। उसी के आधार पर बँगला के सुप्रसिद्ध साहित्यकार शंकर ने 'आमि विवेकानन्द बलछि' शीर्षक के साथ एक अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित कराया है। हम उपरोक्त दोनों ग्रन्थों तथा कुछ अन्य सामग्री के संयोजन के साथ यह संकलन क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं। इसके द्वारा स्वामीजी के अपने ही शब्दों में उनके जीवन तथा ध्येय का एक प्रेरक विवरण प्राप्त होगा। – सं.)

(गतांक से आगे)

एक बार मैं पश्चिमी भारत में भारतीय समुद्र के तटवर्ती मरुभूमि में भ्रमण कर रहा था। बहुत दिन तक निरन्तर पैदल भ्रमण करता रहा। किन्तु प्रतिदिन यह देखकर मुझे महान् आश्चर्य होता था कि चारों ओर सुन्दर झीलें हैं, वे चारों ओर वृक्षों से घिरी हैं और वृक्षों की परछाई जल में पड़ रही है। मैं अपने मन में कहने लगा, "ये कैसे अद्भुत दृश्य हैं! और लोग इसे रेगिस्तान कहते हैं!" एक महीने तक मैं वहाँ घूमता रहा और प्रतिदिन मुझे वे सुन्दर दृश्य दिखायी देते रहे। एक दिन मुझे बड़ी प्यास लगी। मैंने सोचा कि चलूँ – एक झील पर जाकर प्यास बुझा लूँ। अतः मैं इस सुन्दर निर्मल झीलों में से एक की ओर अग्रसर हुआ। जैसे मैं आगे बढ़ा कि वह सब दृश्य न जाने कहाँ लुप्त हो गया। तब मेरे मन में सहसा यह ज्ञान हुआ कि 'जीवन भर जिस मरीचिका की बात पुस्तकों में पढ़ता रहा हूँ, यह तो वही मरीचिका है!' और उसके साथ साथ यह ज्ञान भी हुआ कि 'पिछले पूरे महीने प्रतिदिन मैं मरीचिका ही देखता रहा, पर समझ नहीं सका कि यह मरीचिका है।' दूसरे दिन मैंने पुनः चलना प्रारम्भ किया। फिर से वही सुन्दर दृश्य दिखने लगे, पर अब साथ-साथ यह ज्ञान भी रहने लगा कि यह सचमुच की झील नहीं है, यह मरीचिका है।

बस, इस जगत् के विषय में भी ठीक यही बात है। हम प्रतिदिन, प्रतिमास, प्रतिवर्ष इस जगत्-रूपी मरुस्थल में भ्रमण कर रहे हैं, पर मरीचिका को मरीचिका नहीं समझ पा रहे हैं। एक दिन यह मरीचिका अदृश्य हो जाएगी। पर वह फिर से आ जाएगी – शरीर को पूर्व कर्मों के अधीन रहना पड़ता है, अतः यह मरीचिका फिर लौट आएगी। जब तक हम कर्म में बँधे हुए हैं, तब तक जगत् हमारे सम्मुख आएगा ही। नर, नारी, पशु, वनस्पति, आसक्ति, कर्तव्य – सब कुछ आएगा, पर वह पहले की भाँति हम पर प्रभाव न डाल सकेगा। इस नवीन ज्ञान के प्रभाव से कर्म की शक्ति का नाश हो जाएगा, उसके विष के दाँत टूट जाएँगे; जगत् हमारे लिए एकदम बदल जाएगा; क्योंकि जैसे ही जगत् दिखायी देगा, वैसे ही उसके साथ उसका स्वरूप और सत्य तथा मरीचिका के भेद का ज्ञान भी हमारे सामने प्रकाशित हो जाएगा।[४६]

ठीक-ठीक संन्यास क्या आसानी से होता है? ऐसा कठिन आश्रम कोई दूसरा नहीं। जरा भी नीति-विरुद्ध पैर पड़े कि पहाड़ से एकदम खड्ड में गिरे – हाथ-पैर सब टकराकर चकना-चूर! एक दिन मैं आगरे से वृन्दावन पैदल जा रहा था। पास में एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी। वृन्दावन से करीब एक कोस की दूरी पर था – देखा, रास्ते के किनारे एक व्यक्ति बैठकर तम्बाकू पी रहा है। उसे देखकर मुझे भी तम्बाकू पीने की इच्छा हुई। मैंने उससे कहा, "अरे भाई, जरा मुझे भी चिलम देगा?" वह मानो सकुचाता हुआ बोला, "महाराज, हम भंगी हैं।" संस्कार तो है ही! सुनकर मैं पीछे हट गया और बिना तम्बाकू पिये ही फिर रास्ता चलने लगा। पर थोड़ी दूर जाकर मन में विचार आया, "अरे, मैंने तो संन्यास लिया है; जाति, कुल, मान सब कुछ छोड़ दिया है, फिर भी उस व्यक्ति ने जब अपने को भंगी बताया, तो मैं पीछे क्यों हट गया? उसका छुआ हुआ तम्बाकू भी न पी सका!" ऐसा सोचकर मन व्याकुल हो उठा। उस समय करीब दो फर्लांग रास्ता चल आया था। पर फिर लौटकर उसी मेहतर के पास आया, देखता हूँ, अब भी वह व्यक्ति वहीं पर बैठा है। मैंने आकर जल्दी से कहा, "अरे भैया, एक चिलम तम्बाकू भरकर ले आ।" उसने फिर कहा कि वह मेहतर है। पर मैंने उसकी मनाही की कोई परवाह न की और कहा, "चिलम में तम्बाकू देना ही पड़ेगा।" वह फिर क्या करता? अन्त में उसने चिलम भरकर मुझे दे दी। फिर आनन्द से तम्बाकू पीकर मैं वृन्दावन आया। अतएव संन्यास लेने पर इस बात की परीक्षा लेनी होती है कि व्यक्ति स्वयं जाति-वर्ण के परे चला गया है या नहीं। ठीक-ठीक संन्यास-व्रत की

रक्षा करना बड़ा ही कठिन है, कहने और करने में जरा भी फर्क होने की गुंजाइश नहीं है।[४७]

यह तपस्या प्रत्येक धर्म में है। धर्म के इन सब अंगों के साधन में हिन्दू सबसे बढ़े-चढ़े हैं। तुम ऐसे अनेक लोग पाओगे, जो सारे जीवन भर अपना हाथ ऊपर उठाये रखते हैं, यहाँ तक कि अन्त में उनके हाथ सूखकर नष्ट हो जाते हैं। बहुत-से लोग दिन-रात खड़े ही रहते हैं और अन्त में उनके पैर फूल जाते हैं। वे इतने कड़े हो जाते हैं कि वे फिर मोड़े नहीं जा सकते। सारे जीवन भर उन्हें खड़ा ही रहना पड़ता है। मैंने एक समय ऊपर हाथ उठाये हुए एक व्यक्ति को देखा था। मैंने उससे पूछा, "जब तुम पहले-पहल इसका अभ्यास करते थे, तब तुम्हें कैसा लगता था?" उसने कहा, "पहले-पहल भयानक पीड़ा मालूम होती थी, इतनी कि मुझे नदी में जाकर पानी में डूबे रहना पड़ता था; उससे कुछ समय के लिए पीड़ा थोड़ी कम होती थी। एक महीने बाद फिर कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ।" इस प्रकार के अभ्यास से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।[४८]

जब जयपुर में था, तब एक बड़े भारी वैयाकरण के साथ साक्षात्कार हुआ। उनसे व्याकरण पढ़ने की इच्छा हुई। व्याकरण के बड़े विद्वान् होने पर भी, उनमें पढ़ाने की योग्यता बहुत नहीं थी। उन्होंने मुझे तीन दिन तक प्रथम सूत्र का भाष्य समझाया, फिर भी मैं उसकी धारणा न कर सका। चौथे दिन अध्यापक जी नाराज होकर बोले, "स्वामीजी, जब मैं तीन दिन में भी प्रथम सूत्र का मर्म आपको नहीं समझा सका, तो लगता है कि मेरे पढ़ाने से आपको कोई लाभ नहीं होगा।" यह सुनकर अपने मन में बड़ी ग्लानि हुई। भोजन और निद्रा त्यागकर प्रथम सूत्र का भाग्य अपने आप ही पढ़ने लगा। तीन घण्टे में उस सूत्रभाष्य का अर्थ मानो करामलक के समान स्पष्ट हो गया। इसके बाद मैंने अध्यापक जी के पास जाकर पूरी व्याख्या का तात्पर्य समझा दिया। सुनकर अध्यापक जी बोले, "मैं तीन दिन से जो समझा न सका, आपने तीन घण्टे में उसकी ऐसी चमत्कारपूर्ण व्याख्या कैसे सीख ली?" उस दिन से प्रतिदिन शीघ्र गति से अध्याय पर अध्याय पढ़ता गया। मन की एकाग्रता होने से सब सिद्ध हो जाता है – सुमेरु पर्वत को भी चूर्ण करना सम्भव है।[४९]

मलाबार देश (वर्तमान केरल प्रान्त)...। वहाँ सभी विषयों में स्त्रियों का प्राधान्य है। वहाँ सर्वत्र ही विशेष रूप से स्वच्छता की ओर दृष्टि रखी जाती है और विद्या-चर्चा में भी अत्यधिक उत्साह है। मैं जब उस प्रदेश में गया, तो मैंने अनेक स्त्रियों को देखा, जो उत्तम संस्कृत बोल सकती थी, पर भारत में अन्यत्र दस लाख में एक स्त्री भी संस्कृत नहीं बोल सकती।[५०]

एक बार मैं हिमालय में भ्रमण करते समय किसी पहाड़ी गाँव में एक रात के लिए ठहर गया था। सायंकाल होने पर गाँव में ढोल का शब्द सुना तो घरवाले से पूछने पर मालूम हुआ कि गाँव के किसी मनुष्य पर 'देवता चढ़ा' है। घरवाले के आग्रह पर और अपना कौतुक निवारण करने के लिए मैं देखने गया। जाकर देखा – बड़ी भीड़ लगी थी। उसने लम्बे घुँघराले बालों वाले एक पहाड़ी को दिखाकर कहा कि इसी पर देवता चढ़ा है। मैंने देखा – उसके पास ही एक कुल्हाड़ी को आग में लाल कर रहे थे। फिर देखा कि उस लाल कुल्हाड़ी से उस देवताविष्ट मनुष्य के शरीर को जगह-जगह पर जला रहे हैं और उसके बालों से छुला रहे हैं। पर आश्चर्य की बात यह थी कि न तो उसका कोई अंग या बाल जलता था, न उसके चेहरे से किसी कष्ट के चिह्न प्रकट होते थे। मैं तो देखकर अवाक् रह गया। तभी गाँव के मुखिया ने मेरे पास आकर हाथ जोड़कर कहा, "महाराज, आप कृपया इसका भूत उतार दीजिए।" मैं तो यह बात सुनकर घबड़ा गया। पर क्या करता, सबके कहने पर मुझे उस देवताविष्ट मनुष्य के पास जाना पड़ा। पास जाकर उस कुल्हाड़ी को जाँचने की इच्छा हुई। उससे हाथ लगाते ही मेरा हाथ झुलस गया। तब तक कुल्हाड़ी थोड़ी काली भी पड़ चुकी थी, तो भी मारे जलन के मैं बेचैन हो गया। मेरी तर्कयुक्ति का लोप हो गया। क्या करता, जलन के मारे व्याकुल होकर भी उस मनुष्य के सिर पर अपना हाथ रखकर थोड़ी देर जप किया। पर आश्चर्य की बात यह है कि ऐसा करने से १०-१२ मिनट बाद ही वह ठीक हो गया। तब गाँववालों की मेरे प्रति भक्ति का क्या ठिकाना! वे तो मुझे भगवान ही समझने लगे! पर मैं इस घटना को कुछ भी नहीं समझ सका। बाद में भी कुछ नहीं जान सका। अन्त में मैं और कुछ न कहकर घरवाले के साथ कुटिया में लौट आया। तब रात के कोई बारह बजे होंगे। आते ही लेट गया, पर जलन के मारे और इस घटना का कोई भेद न निकाल सकने के कारण नींद नहीं आई। जलती हुई कुल्हाड़ी से मनुष्य का शरीर दग्ध नहीं हुआ, इस पर मैं सोचने लगा, "There are more things in heaven and earth than dreamt of in your philosophy." – (पृथ्वी और स्वर्ग में ऐसी अनेक घटनाएँ हैं, जिनका समाधान दर्शन-शास्त्रों को स्वप्न में भी नहीं मिल सका है।) ...

श्रीरामकृष्ण सिद्धाइयों की बड़ी निन्दा किया करते थे। वे कहते कि इन शक्तियों के प्राकट्य की ओर मन लगाने से परमार्थ की प्राप्ति नहीं होती, पर मनुष्य का मन ऐसा दुर्बल है कि गृहस्थों का तो कहना ही क्या, साधुओं में भी चौदह आने लोग सिद्धाई के उपासक होते है। पाश्चात्य देशों के लोग इन जादुओं को देखकर अवाक् हो जाते हैं। सिद्धाई प्राप्त करना अनुचित है; वह धर्मपथ में विघ्न डालता है।

श्रीरामकृष्ण के कृपापूर्वक समझाने के कारण ही मैं यह बात समझ सका हूँ। क्या तुमने देखा नहीं कि श्री गुरुदेव के शिष्यों में से कोई भी उधर ध्यान नहीं देता?[५१]

मद्रास में जब मैं मन्मथ बाबू के घर में था, तब एक रात मैंने स्वप्न में देखा कि मेरी माताजी का देहान्त हो गया है। मन में बड़ा दु:ख होने लगा। उस समय मठ को भी बहुत कम पत्र आदि लिखता था, तो घर की तो बात ही क्या! स्वप्न की बात मन्मथ बाबू से कहने पर उन्होंने उसकी जाँच करने के लिए कलकत्ते तार भेजा; क्योंकि स्वप्न देखकर मन बड़ा बेचैन था। इधर मद्रास के मित्रगण मेरे अमेरिका जाने का सारा प्रबन्ध करके जल्दी मचा रहे थे। पर माताजी की कुशलता का संवाद लिये बिना मेरा मन जाने को तैयार नहीं था। मेरे मन की अवस्था देखकर मन्मथ बाबू बोले, 'देखिये, नगर से कुछ दूर एक पिशाच-सिद्ध व्यक्ति है, वह मनुष्य का भूत-भविष्य और भला-बुरा – सब कुछ बता सकता है।'' मन्मथ बाबू के अनुरोध और अपने मानसिक उद्वेग की शान्ति के लिये मैं उसके पास जाने को राजी हुआ। मन्मथ बाबू, मैं, आलासिंगा और एक अन्य सज्जन कुछ दूर तक रेल से गये। फिर पैदल चलकर वहाँ पहुँचे। पहुँचकर क्या देखा कि मसान के पास एक विकट आकार का मृतक-सा, सूखा, खूब काले रंग का मनुष्य बैठा हुआ है। उसके अनुचरों ने 'किडीं-मिडीं' कर मद्रासी भाषा में समझा दिया कि वही पिशाच-सिद्ध पुरुष है। पहले तो उसने हम लोगों पर कोई ध्यान ही नहीं दिया। फिर जब हम लौटने को हुए, तब उसने हम लोगों से ठहरने का अनुरोध किया।

हमारे साथी आलासिंगा ने ही उसकी भाषा हमें तथा हमारी भाषा उसे समझाने का कार्य किया। उसने ही हम लोगों से ठहरने को कहा। फिर वह पिशाच-सिद्ध मनुष्य एक पेंसिल लेकर कुछ समय तक न जाने क्या लिखता रहा। फिर देखा कि वह मन को एकाग्र करके बिल्कुल स्थिर हो गया, उसके बाद मेरा नाम, गोत्र आदि चौदह पीढ़ी तक की बातें बतलायीं और कहा कि श्रीरामकृष्ण मेरे साथ सर्वदा फिर रहे हैं। उसने माताजी का कुशल समाचार भी बतलाया और यह भी कहा कि धर्मप्रचार के लिए मुझे शीघ्र ही बहुत दूर जाना पड़ेगा। इस प्रकार माताजी की कुशलता का संवाद मिल जाने पर मन्मथ बाबू के साथ शहर लौटा। वहाँ पहुँचकर कलकत्ते के तार के जवाब में भी माताजी के सकुशल होने का संवाद मिल गया।... उस व्यक्ति ने जो कुछ बताया था वह सब पूरा हुआ। नहीं कह सकता कि वह 'काक-तालीय' के समान हुआ या किसी अन्य प्रकार से।...

मैं क्या बिना देखे-भाले किसी पर विश्वास करता? मैं ऐसा आदमी ही नहीं हूँ। महामाया के राज्य में आकर जगत्-रूपी जादू के साथ-साथ और कितने ही जादू देखने में आये। माया! माया!![५२]

एक बार मैंने एक ऐसे व्यक्ति के बारे में सुना, जो किसी के मन के प्रश्न का उत्तर, प्रश्न सुनने के पहले ही बता देता था। और मुझे यह भी बतलाया गया कि वह भविष्य की बातें भी बताता है। मुझे उत्सुकता हुई और अपने कुछ मित्रों के साथ मैं वहाँ पहुँचा। हममें से प्रत्येक ने अपने मन में पूछने के लिये प्रश्न सोच रखा था। कोई गलती न हो, इसलिए हमने वे प्रश्न कागज पर लिखकर जेब में भी रख लिये थे। उसने ज्योंही हममें से एक को देखा, त्योंही हमारे प्रश्न और उनके उत्तर देना शुरू कर दिया! फिर उस मनुष्य ने कागज पर कुछ लिखकर, उसे मोड़ा और उसके पीछे मुझे हस्ताक्षर करने को कहा और बोला, ''जब तक मैं इसे वापस न माँगूँ, तब तक के लिये इसे बिना-पढ़े जेब में रख लो।'' हर एक के साथ उसने ऐसा ही किया। बाद में उसने हम लोगों को हमारे भविष्य की कुछ बातें बतायीं। इसके बाद वह बोला, ''अब तुम लोग किसी भी भाषा का कोई भी शब्द या वाक्य अपने मन में सोच लो।'' मैंने संस्कृत का एक लम्बा वाक्य सोच लिया। वह मनुष्य संस्कृत से बिल्कुल अनभिज्ञ था। उसने कहा, ''अब अपने जेब का कागज निकालो।'' कैसा आश्चर्य! वही संस्कृत वाक्य उस कागज पर लिखा हुआ था! और नीचे यह भी लिखा था, ''जो कुछ मैंने इस कागज पर लिखा है, वही यह व्यक्ति सोचेगा।'' यह बात उसने एक घण्टा पूर्व ही लिख दिया था! फिर हममें से दूसरे को, जिसके पास भी उसी तरह का एक दूसरा कागज था, कोई वाक्य सोचने को कहा गया। उसने अरबी भाषा का एक वाक्य सोचा। अरबी भाषा जानना तो उसके लिए बिल्कुल ही असम्भव था। वह वाक्यांश कुरान शरीफ का था, लेकिन मेरे मित्र ने देखा कि वह भी कागज पर लिखा है। हममें से तीसरा डॉक्टर था। उसने किसी जर्मन भाषा की डॉक्टरी पुस्तक का वाक्य अपने मन में सोचा। उसके कागज पर वह वाक्य भी लिखा हुआ था। यह सोचकर कि कहीं मैं पहले से भ्रम में न रहा होऊँ, कुछ दिनों बाद मैं फिर दूसरे मित्रों को साथ लेकर वहाँ गया। लेकिन इस बार भी उसे वैसी ही आश्चर्यजनक सफलता मिली।[५३]

❖ (क्रमश:) ❖

सन्दर्भ-सूची –

४६. विवेकानन्द साहित्य, प्रथम सं., खण्ड २, पृ. ३६; **४७.** वही, खण्ड ६, पृ. २१९-२०; **४८.** वही, खण्ड १, पृ. २०४-०५; **४९.** वही, खण्ड ६, पृ. ९७; **५०.** वही, खण्ड ७, पृ. ३; **५१.** वही, खण्ड ६, पृ. ६९-७०; **५२.** वही, खण्ड ६, पृ. ७०-१; **५३.** वही, खण्ड ४, पृ. १६७

वसुधैव कुटुम्बकम्

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिये विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा प्रसारित किये गये तथा लोकप्रिय भी हुए। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, रायपुर से साभार गृहीत हुआ है। – सं.)

नीतिकार ने संकीर्ण चित्त और उदार चित्त का अन्तर बतलाते हुए कहा है –

अयं निज: परो वैति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

– "संकुचित हृदयवालों की यह भावना होती है कि यह मेरा है और यह दूसरे का, पर उदार चरित्रवाले व्यक्तियों के लिए सारी वसुधा ही अपना कुटुम्ब बन जाती है।"

यह मनुष्य की ममता है, जो उसे छोटा बना देती है। कहा भी तो है – 'ममता बुरी बलाय'। यह सही है कि ममता के द्वारा माता-पिता अपनी सन्तानों के परिपालन की प्रेरणा पाते हैं, पर यह भी सही है कि ममता-रोग से ग्रस्त व्यक्ति स्वार्थ के तंग दायरे में घिरकर संकीर्ण, अनुदार और पक्षपाती हो जाता है। एक न्यायाधीश का किस्सा है। उसने जाने कितने अपराधियों को फाँसी की सजा दी थी, किन्तु एक दिन जब उसी का लड़का हत्या के अपराध में उसी अदालत में पेश किया गया, तो न्यायाधीश का स्वर बदल गया। वह दलील देने लगा – "फाँसी की सजा अमानवीय है। मनुष्य को ऐसी कठोर सजा देना शोभा नहीं देता। इससे अपराधी की सुधरने की आशा नष्ट हो जाती है। खून करने वाले ने भावना और आवेश में, जोश और उत्तेजना में खून कर डाला, परन्तु उसकी आँखों पर से खून का जूनून उतर जाने पर उस व्यक्ति को संजीदगी के साथ फाँसी के तख्ते पर चढ़ाकर मार डालना मानवता के लिए बड़ी लज्जा की बात है, बड़ा कलंक है, आदि आदि।" यदि न्यायाधीश के सामने उसका अपना लड़का न होकर अन्य कोई होता, तो उसने बेहिचक उसे फाँसी की सजा दे दी होती। पर लड़के के प्रति उसका ममत्व उसके कर्तव्य-पालन में आड़े आ रहा था।

इस ममत्व का कारण यह है कि हम संसार को 'वस्तुनिष्ठ' दृष्टिकोण से नहीं देख पाते। संसार को देखने के दो तरीके हैं – एक तो वह जिसे हम subjective यानी 'आत्मनिष्ठ' दृष्टिकोण कहते हैं और दूसरा objective यानी 'वस्तुनिष्ठ' दृष्टिकोण कहलाता है। पदार्थ के अपने कुछ विशिष्ट गुण होते हैं, जो उस पदार्थ के सन्दर्भ में तो अपरिवर्तनशील हैं, पर व्यक्ति-भेद से उनके महत्त्व और उपादेयता में भिन्नता हुआ करती है। उदाहरणार्थ, हम सोने की एक डली लें। सोने की दृष्टि से सोने के जो गुण हैं, वे परिवर्तित नहीं होते, पर विभिन्न व्यक्ति उस डली को अलग अलग दृष्टिकोण से देखेंगे – कोई उसमें हार देखेगा, तो कोई कंगन। जिसे कर्णफूल बनाने की इच्छा होगी, वह उस डली में कर्णफूल देखेगा। इस प्रकार, सोने के साथ रागात्मक सम्बन्ध में व्यक्ति-भेद से भिन्नता हो जाती है। यदि ये रागात्मक सम्बन्ध हटा दिये जायँ, तो व्यक्ति-निरपेक्ष दृष्टि से सोने को देखने में समर्थ होगा। उसे सोना-सोना ही दिखाई देगा। हम अपनी इस बात को थोड़ा और स्पष्ट करें।

कल्पना करें कि एक व्यक्ति जरूरत में पड़कर अपना सोने का गणेशजी बेचने के लिए दुकान पर आया है। इस व्यक्ति के लिए भले ही गणेशजी का रूप सत्य हो, पर दुकानदार के लिए तो सोना ही सत्य है। वह रूप की तनिक परवाह नहीं करता। अगर गणेशजी हाथ से छूटकर नीचे गिर जायँ, तो बेचनेवाला लपककर उसे उठा लेगा और देखेगा कि मूर्ति कहीं पर क्षत तो नहीं हुई। दुकानदार अविचलित रहता है। गणेशजी के मुड़ने और टूटने से उसका कोई प्रयोजन नहीं। गणेशजी साबूत हों, तो भी उसकी दृष्टि में उतनी ही कीमत के होंगे, जितनी कि मुड़ने या टूटने पर।

हमारा सारा मोह तब शुरू होता है, जब परिस्थितियों को उनके वास्तविक स्वरूप में न देखकर हम उनके साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। इससे व्यक्ति निरपेक्ष नहीं रह पाता और इसीलिए जीवन की सारी भूलें हुआ करती हैं। तब हमारा सन्तुलन उपर्युक्त न्यायाधीश के समान बिगड़ जाता है और जाँच के हमारे सारे मापदण्ड ही बदल जाते हैं। ममत्व हमें संकीर्ण बना देता है। ममत्व का यह रोग हममें इतनी गहराई तक व्याप्त है कि इसने हमारे राष्ट्रीय चरित्र को ही दूषित कर दिया है। रोग की इस विभीषिका से त्राण पाने का बस यही उपाय है कि हम अपने दृष्टिकोण को अधिक 'वस्तुनिष्ठ' बनाने का प्रयास करें। वही हमें उदारचेता बनाएगा। तभी हम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भाव की ठीक-ठीक धारणा कर सकेंगे। ❑❑❑

साधना, शरणागति और कृपा (६/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(निम्नलिखित प्रवचन पण्डितजी द्वारा रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में ३१ जनवरी से ५ फरवरी १९९४ ई. तक प्रदत्त हुआ था। 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ इसे टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य किया है श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने। – सं.)

महाराज मनु के जीवन-क्रम पर विचार करके हम समझ सकते हैं कि व्यक्ति अपने धर्म का विस्तार करता हुआ अन्त में समझ जाता है कि जगन्माता और जगत्पिता को पाना ही हमारा उद्देश्य है, तब उसके जीवन में साधना की अभिलाषा उत्पन्न होती है। गोस्वामीजी ने मनु की साधना का वर्णन किया है। ऋषियों ने उनसे कहा – पहले तीर्थों की यात्रा कर आइए। फिर कहा – अब कथा श्रवण कीजिए। जीवन में पहले भी वे इन धर्मों का पालन कर चुके थे, पर तब कर्तव्य के रूप में किया था और अब भगवत्प्राप्ति के उद्देश्य से पालन कर रहे हैं। तब के कथा-श्रवण और आज के कथा-श्रवण – दोनों में भेद है। गोस्वामीजी ने बड़ी सुन्दर बात कही – वेद-पुराण पर्वत हैं – **पावन पर्बत बेद पुराना**।

आप जानते हैं कि पहाड़ में हर तरह के खान विद्यमान हैं – लोहा भी है, चाँदी भी है, ताँबा भी, सोना भी है और हीरा भी है। वेद और पुराणों में सब है। यह आप पर निर्भर है कि आप उसमें क्या खोज रहे हैं। एक राजा जब पुराण सुनेगा, तो उससे वह यह जानना चाहेगा कि राजा का धर्म क्या है? प्राचीन काल में राजाओं ने किस तरह अपने कर्तव्यों का निर्वाह किया? उसका ध्यान उस ओर होगा, जो उसके जीवन में प्रेरक है। पर जब वह राजधर्म से मुक्त होकर कथा-श्रवण करेगा, तो उसका उद्देश्य भिन्न होगा।

कथा-श्रवण के उद्देश्य के विषय में मुझे एक बड़ा विलक्षण अनुभव हुआ। जबलपुर से मेरा बड़ा पुराना सम्बन्ध रहा है। मेरे कथा में बैठने के बाद एक सज्जन माला लेकर आये। वे बहुत महँगी माला बनवाकर लाए थे। उन्होंने मुझे पहनाया और मैंने कथा आरम्भ की। मेरे मुख से पहला वाक्य निकला और वे उठकर चले गये। दूसरे दिन वे फिर आए। मैंने सोचा कि कल शायद कोई आवश्यक काम रहा होगा। उस दिन भी फिर वही सुन्दर-सी माला लाये थे। मुझे पहनाया और जब कथा शुरू हुई, तो एक वाक्य भी पूरा होने के पहले ही उठकर चले गये। जब नित्य यही क्रम चलने लगा, तो मैंने कहा कि क्या इनको नित्य ही कोई आवश्यक काम रहता है? उनके मित्र ने बताया – "नहीं, रहस्य कुछ दूसरा है। ये सट्टेबाज हैं। पहले दिन आपने जब हाथ उठाया, तो आपकी जितनी उंगलियाँ उठी, उसी अंक को आधार बनाकर उन्होंने विजय पायी। वे तो बस इतना ही देखने आते हैं कि आपकी कितनी उँगलियाँ उठीं।" अब सोचिए, ऐसे अद्भुत श्रोता भी होते हैं! यदि उनके मित्र न बताते, तो मैं कभी समझ ही न पाता। कथा में कितने प्रकार के लोग आ सकते हैं! तो कथा सुनने का उद्देश्य क्या है? आप क्या पाने हेतु कथा में आए हुए हैं? गोस्वामीजी कहते हैं कि वेद-पुराण पर्वत हैं और उसके आसपास जंगल भी है, उसमें खदानें भी हैं और वहाँ पहुँचकर आप क्या देखेंगे –

पावन पर्बत बेद पुराना।
रामकथा रुचिराकर नाना।।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी।
ग्यान बिराग नयन उरगारी।।
भाव सहित खोजइ जो प्रानी।
पाव भगतिमनि अति सुखखानी।। ७/१२०/१३-५

वेद-पुराणों में आप हर तरह की शिक्षा पा सकते हैं। जो चाहें, ले लीजिये। पर यदि आपका लक्ष्य भक्तिमणि को पाना है, तो उसके लिये गुरु या सन्त रूपी मर्मी सज्जन चाहिए, वे ही पुराण-कथाओं का रहस्य – सच्चा मर्म जानते हैं, क्योंकि उनके पास ज्ञान तथा वैराग्य के दो नेत्र होते हैं।

इस सन्दर्भ में शुक्राचार्यजी की कथा याद आती है। वे सारे ऋषि-मुनियों और देवगुरु बृहस्पति से भी अधिक विद्वान् हैं। देवगुरु बृहस्पति को मृतसंजीवनी विद्या का ज्ञान नहीं था, पर शुक्राचार्यजी को था। देवासुर युद्ध में जो देवता मरते थे, वे मर ही जाते थे; पर जब दैत्य मरते, तो शुक्राचार्य उन्हें जीवित कर देते। कथा में जीवन का एक बड़ा महत्त्वपूर्ण सत्य आता है – महत्त्व इस बात का नहीं है कि आपके पास कितनी ऊँची विद्या है, बल्कि इस बात का है कि उसके द्वारा आप दुर्गुणों को जीवित करते हैं या सद्गुणों को। सद्गुणों की समस्या यह है कि उनकी बार-बार मृत्यु हुआ करती है।

कंस ने देवकी के जिन छह पुत्रों का वध कर दिया, वे छः सद्गुण थे, साधना की छह सम्पत्तियाँ थे। कंस ने उनका विनाश कर दिया। कंस कौन है? – घोर देहाभिमानी। सूत्र यह है कि यदि हमारे जीवन से देहाभिमान नहीं मिटा, तो

सद्गुण हमारे जीवन में आ जायँ, तो भी कब तक टिकेंगे? इसीलिए देहाभिमान का कंस देवकी के गर्भ से जन्म लेनेवाले सद्गुणों को नष्ट कर देता है। भगवान जन्म लेते हैं और बाद में संदीपन ऋषि के आश्रम में शिक्षा लेने जाते हैं। वहाँ वे गुरुमाता की इच्छा को जानकर उनके मृत पुत्र को पुन: जीवन देते हैं। उनके लौटने पर देवकी ने सुना कि हमारा यह पुत्र बड़ा विलक्षण है – मृत बालकों को जीवित कर देता है। वे बोलीं – कंस द्वारा मारे हुए मेरे पुत्रों को यदि जीवित कर दो, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी! भगवान ने उन्हें जीवित कर दिया। बड़ी महत्त्वपूर्ण कथा है! वे सद्गुण फिर जीवित हुए, पर इस बार भगवान की कृपा से हुए। अपने पुरुषार्थ के द्वारा जो सद्गुण प्राप्त होते हैं, वे नाशवान होते हैं।

सद्गुणों का सदुपयोग और दुरुपयोग एक बड़े महत्त्व का विषय है। शुक्राचार्यजी को जो दिव्य विद्या प्राप्त है, उसके द्वारा वे सद्गुणों की नहीं, दुर्गुणों की सहायता करते हैं, दुर्गुणों को जीवन-दान करते हैं। उनकी यह मृत-संजीवनी क्षमता कल्याणकारी नहीं है। आप में से जिनका ज्योतिष से परिचय होगा। मैं ज्योतिष के रोगियों के बारे में नहीं कह रहा हूँ, बल्कि जो थोड़ा उसके सदुपयोग के बारे में जानते हैं। इस शास्त्र के अनुसार यदि किसी की जन्मपत्री में उसके ज्ञान के विषय में विचार करना हो, तो बृहस्पति को मुख्यता दी जाती है और भोग-सामग्री आदि के विषय में शुक्र को। यदि आप आकाश में देखें, तो बृहस्पति में भी चमक है, पर उतनी नहीं, जितनी कि शुक्र में है। यह भी नियम है कि जब शुक्रास्त हो जाय, तब विवाह या गौना नहीं किया जाता। तो शुक्र का सम्बन्ध सांसारिक सुख से है और बृहस्पति का सम्बन्ध विचारजन्य या परमार्थजन्य सुख से है।

कथा का दूसरा पक्ष भी बड़े महत्त्व का है। उसी दैत्यवंश में बलि ने जन्म लिया, जिनके गुरु शुक्राचार्य हैं। बलि भक्त-शिरोमणि प्रह्लाद के पौत्र हैं। उनमें दोनों वृत्तियाँ हैं – दैत्य जाति का भी गुण-स्वभाव है और प्रह्लाद का पौत्र होने के नाते भक्ति-भाव भी है। अद्भुत व्यक्तित्व है! उन्होंने अपनी शक्ति और पराक्रम से इन्द्र से स्वर्ग छीनकर उस पर अधिकार कर लिया। शुक्राचार्यजी उनके सहायक हैं। देवता परास्त हो गये। उनके गुरु बृहस्पति कुछ नहीं कर सके। तब देवताओं ने व्याकुल होकर भगवान को पुकारा। संकट के समय देवतागण भगवान को जरूर पुकारते हैं। भगवान बोले – "देखो, वह मेरे भक्त का पौत्र है। मैं न तो उससे लड़ूँगा और न उससे स्वर्ग ही छीनूँगा। मैं तो भिक्षुक बनकर उससे स्वर्ग माँगकर तुम्हें दे दूँगा।" इन्द्र प्रसन्न होकर बोले – "बस महाराज, आप भिक्षुक बने या चाहे जो बनें, हमें तो अपना स्वर्ग चाहिए। हमें क्या – आप लड़ें या भिक्षा माँगें।" भगवान वामन बन गये और बलि की यज्ञशाला में गये।

बलि ने जब सबको जीत लिया, तो उसके मन में आया कि यज्ञ करें और उसमें दान दें। दैत्य-वृत्ति से जीत लिया और प्रह्लाद के पौत्र के नाते उसे वितरण करने का संस्कार जागा। बलि की यज्ञशाला में भगवान पधारे, तो वे उन्हें देखकर चकित हो गये। वामन की नन्ही-सी आकृति थी, पर तेज ऐसा दिव्य था कि सब लोगों ने चकित होकर उनकी ओर देखा और स्वागत किया। बलि अपने को धन्य अनुभव करने लगे। बोले – ब्रह्मचारीजी, बड़ी कृपा करके पधारे। इस यज्ञ में जो भी जो कुछ माँगने आता है, उसको वह मैं देता हूँ। आप जो माँगेंगे, मैं दूँगा। भगवान बड़े कौतुकी हैं!

इधर बलि ने कहा, 'जो माँगेंगे, मैं दूँगा' और उधर से शुक्राचार्य आ पहुँचे और पहचान लिया कि ये तो विष्णु हैं। तुरन्त बलि के पास जाकर उनके जाँघ का स्पर्श करके उन्हें संकेत किया – चलो बाहर। एकान्त में ले गये, बोले – "जानते हो, ये कौन हैं? यह कोई वामन ब्रह्मचारी नहीं है, ये स्वयं भगवान विष्णु हैं और छलपूर्वक तुम्हारा राज्य भिक्षा में लेकर इन्द्र को दे देंगे। तुम जाकर कह दो कि नहीं महाराज, मैं नहीं दूँगा। आप माँगे, पर देना या न देना तो मेरे हाथ में है, मैं स्वतंत्र हूँ।" यहाँ पर प्रह्लाद के पौत्र होने के कारण बलि का वह संस्कार जागा। उन्होंने शुक्राचार्य से कहा – "महाराज, मैं नहीं पहचान पाया और आपने पहचान लिया। मैं तो धन्य हो गया। गुरुदेव, आप कितने महान् हैं! गुरु ही ईश्वर को पहचान सकता है। परन्तु मुझे एक ही सन्देह है, जब आप कह रहे हैं कि वे साक्षात् विष्णु भगवान हैं और आप यह भी जानते हैं कि भगवान सर्वशक्तिमान हैं। चाहते, तो बलपूर्वक स्वर्ग छीनकर इन्द्र को लौटा सकते थे। पर वे कृपा करके भिक्षुक बनकर आए हैं, तो इससे बढ़िया क्या अवसर होगा! मैं तो इस अवसर का सदुपयोग करूँगा।"

शुक्राचार्य को क्रोध आ गया। बोले – तू गुरु की बात नहीं मानता, जा तेरी सम्पत्ति नष्ट हो जाय! बलि के होठों पर हँसी आ गई – गुरुदेव देख लीजिए, आपके मुँह से भी वही निकला, जो वे करने आए हैं। आपको चिन्ता थी बचाने की और कह दिया – तेरी सम्पत्ति नष्ट हो जाय। शुक्राचार्य थोड़े शान्त हुए। परिवार में बड़े-बूढ़े क्रोध में कुछ शाप-वाप दे देते हैं, तो बाद में पछताने लगते हैं कि अरे, मुँह से यह कैसे निकल गया! सोचने लगे – यदि बलि नहीं मानता, तो भी हम अपने यजमान का राज्य नष्ट नहीं होने देंगे। दान के पूर्व संकल्प के समय हाथ में चावल और कुश लेकर उस पर जल डाला जाता है। आचार्य मंत्र बोलते हुए कमण्डलु से जल की धारा यजमान के हाथ पर गिराते हैं और यजमान संकल्प बोलता है कि यह दान मैं इस उद्देश्य से दे रहा हूँ।

बलि ने संकल्प करने के लिये अपने हाथ में कुश को ले लिया और कमण्डलु से जल डालने की बात आई। वामन

भगवान अपना कमण्डलु लेकर आए थे। जब वे जल की धारा गिराने लगे, तो गिर ही नहीं रहा था। क्या हुआ? छेद से पानी क्यों नहीं निकल रहा है? पता चला कि शुक्राचार्यजी यह सोचकर छिद्र में जा बैठे हैं कि जब जल ही नहीं गिरेगा, तो मेरे यजमान की सम्पत्ति बच जायेगी।

भगवान वामन मुस्कराए और तुरन्त उन्होंने बलि के हाथ में जो कुश था, उसमें एक कुश लेकर उसके नुकीले भाग से कमण्डलु के छिद्र को साफ करने के लिये उसके भीतर डाला। उसके प्रहार से शुक्रचार्य की एक आँख फूट गई। अब वे बेचारे घबराकर बाहर निकल आए। भगवान को जो लेना होता है, वह तो वे लेकर ही छोड़ते हैं। लेना हो गया।

शुक्राचार्यजी ने भगवान को उलाहना दी – ''महाराज, यजमान की रक्षा करना पुरोहित का कर्तव्य है। मैंने तो अपने कर्तव्य का पालन किया और आपने किस कारण ऐसा दण्ड दे दिया – मेरी एक आँख फोड़ दी!'' भगवान बोले – ''आँख तो आपकी दो अवश्य थी और सबके पास दो आँखें होनी भी चाहिए – एक आँख ज्ञान की और दूसरी वैराग्य की – **ग्यान बिराग नयन उरगारी**। बलि तो मुझे पहचान नहीं सका, पर तुमने पहचान लिया। तुम्हारी ज्ञानवाली आँख तो बिल्कुल ठीक है, पर वैराग्य का नितान्त अभाव है, क्योंकि पहचानने के बाद तुम्हें शिष्य से कहना चाहिए था कि भगवान आए हैं, तो सब कुछ समर्पित कर दो। पर तुम्हें चिन्ता हो गई कि यजमान की सम्पत्ति के साथ हमारा ठाट-बाट भी चला जायगा। सम्पत्ति में इतनी आसक्ति है, इसलिये मैंने तुम्हारी वैराग्य की नकली आँख फोड़ दी, क्योंकि उस आँख का तो तुम उपयोग ही नहीं करते।'' यदि हम वेद-पुराणों को पढ़ डाले, शास्त्रों का अर्थ लगा लें, लेकिन विचार के साथ यदि वैराग्य नहीं है, तो स्वभावत: हम वेद-पुराणों के द्वारा भी केवल अपने स्वार्थों का ही समर्थन करेंगे।

इसलिए भक्ति पाने का उपाय के रूप में बताया गया कि भगवान की कथा मानो हीरे की खान है। सुमति की कुदाल हो, उससे उसे खोदा जाय और ज्ञान-विराग का नेत्र हों। जब कोई व्यक्ति वैराग्य के नेत्र तथा सुमति की कुदाली लेकर वेद-पुराण के पर्वत से भावना सहित रामकथा की गहराई में उतरता है, तो उसमें से भक्ति का वह रत्न निकलता है, जिसे पाते ही जीवन का अन्धकार मिट जाता है।

भाव सहित खोजइ जो प्रानी।
पाव भगतिमनि अति सुखखानी।। ७/१२०/१५

महाराज मनु को पुराणों की जो कथा दुबारा सुनाई गई, उसका तत्त्व यही था कि पहले उन्होंने राजा के रूप में कथा सुनी थी, पर आज वे साधक हैं। आज उन्हें न लोहा चाहिए, न ताँबा चाहिए, न चाँदी, न सोना; आज तो उन्हें केवल मणि चाहिए – भक्तिरूपी मणि। कथा सुनने के बाद उनके जीवन में साधना का क्रम प्रारम्भ होता है। उसी क्रम में मंत्र -जप किया गया। पर उन्होंने जो मंत्र ग्रहण किया, वह कुछ विलक्षण-सा है – **ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**। कई लोग मानते हैं कि यह मंत्र तो भगवान कृष्ण का है। वासुदेव तो भगवान कृष्ण को कहते हैं। यह कैसी साधना है कि वे पाना चाहते हैं राम को और मंत्र जप रहे हैं कृष्ण का। अयोध्या के भक्तों ने एक दूसरा मार्ग निकाल लिया। वे बोले – द्वादस अक्षरों में छः अक्षर राम मंत्र के है – **रां रामाय नमः** और छह अक्षर श्री सीताजी के हैं **श्रीं सीतायै नमः** – हो गये बारह! इस प्रकार वह मंत्र तो राम-सीता का ही होना चाहिए।

परन्तु यहाँ वासुदेव का अर्थ भगवान कृष्ण नहीं है। वे वसुदेव के पुत्र हैं, इसलिए वासुदेव शब्द उनका भी वाचक है। लेकिन वस्तुत: वासुदेव शब्द का अर्थ है – **वासे वासे तिष्ठति** – जो सर्वत्र व्याप्त है, वह वासुदेव है। अभी उनकी साधना में 'रूप' का निश्चय नहीं हुआ है, इसीलिये वे सर्व-व्यापक ब्रह्म का मंत्र ग्रहण करते हैं। बहुत पहले एक बार जब मैं श्री अवध में था, तो इस पर चर्चा चली, तो मैंने बड़ी विनम्रतापूर्वक, उनके सामने यह व्याख्या की। मैंने कहा – ठीक है, यदि कोई बारह अक्षर का वह मंत्र जपे, तो बड़े आनन्द की बात है। पर इस दोहे में बताये गये मंत्र को यदि हम षडाक्षर कहें, तो यह थोड़ा अन्याय होगा। गोस्वामीजी ने स्वयं ही तो अगला वाक्य भी लिखा है –

द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग।। १/१४३

वहाँ तो स्पष्ट ही कहते हैं, वासुदेव के चरणों में। तो वह मंत्र तो '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' ही हो सकता है, दूसरा नहीं हो सकता। 'मानस' में किसी सम्प्रदाय-विशेष का कोई अति-आग्रह नहीं है, कोई विरोध नहीं है। 'मानस' की मान्यता यह है कि आपकी भावना तथा संस्कारों के अनुकूल, आपके लिये जो भी मंत्र उपयोगी हो, कल्याणकारी हो; आप जिस प्रकार की उपलब्धि, जिस रूप में पाना चाहते हो, आप उस प्रकार के मंत्र के द्वारा साधना कर सकते हैं। इसीलिए हमारे यहाँ मंत्रों का इतना विस्तार है। भगवान राम, भगवान कृष्ण, देवी और शंकर के मंत्रों का तो इतना विस्तार है कि इसकी कोई सीमा नहीं। मंत्र अर्थात् अक्षर-शक्ति। इसकी साधना क्यों हितकर है? भगवान की शरणागति और कृपा सर्वोच्च होते हुए भी साधना करना चाहिए या नहीं? बारम्बार कहा गया कि भगवान जो कृपा करते हैं, वह अकारण ही करते हैं। जब वे अकारण ही कृपा करते हैं, तो हम जप क्यों करें? हम तीर्थ क्यों जायँ? हम कथा श्रवण क्यों करें?

इन सबके द्वारा भी कुछ उद्देश्य पूरे होते हैं। उन उद्देश्यों की पूर्ति करना भी आवश्यक है और उन उद्देश्यों के पूरे होने के बाद अन्त में उनसे अलग होना भी आवश्यक है।

मान लीजिए कि आप एक मंत्र जपते हैं। वह मंत्र चाहे बारह अक्षर का हो, छह अक्षर का हो या दो अक्षर का हो, पर वही शब्द आप बार-बार दुहरा रहे हैं। क्यों?

जैसे आप जब कथा श्रवण करते हैं या कथा पढ़ते हैं, तो आपको आनन्द आता है। आपको वह जो आनन्द आता है, उसमें आपको दो बातें मिल जाती हैं – एक तो उस वस्तु की श्रेष्ठता बोध और उसके साथ-साथ उसका स्वाद। स्वाद माने? आपको साहित्य का आनन्द आवेगा। आप कथा पढ़ेंगे, तो उसमें नौ रसों का स्वाद है। भगवान को भोग करावेंगे, तो छप्पन भोग का व्यंजन और षड्रस। तो इसका अभिप्राय यह है कि जब आप श्रवण कर रहे हैं, उस समय जो आपको अच्छा लग रहा है – वह स्वर आपको अच्छा लग रहा है, या भगवान का प्रसाद आपको अच्छा लग रहा है? आप प्रसाद के मिठास का आनन्द ले रहे हैं या प्रसाद में रस आ रहा है? इसका निर्णय करना बड़ा कठिन है।

गीताप्रेस में रघुजी थे – श्रीराम के बड़े भक्त थे। रघु-रघु – श्रीराम का यही नाम उन्हें प्रिय था और यही नाम वे जपा करते थे। नित्य भोग लगाते, पर बदल-बदल कर लगाते। उनके भगवान बता देते थे कि आज मैं यह लूँगा। भक्त लोग प्रसाद लेने को एकत्र होते ही थे। पर कभी-कभी बड़ा विचित्र दृश्य होता। जब वे करेले का भोग लगाकर कहते – आज भगवान की यही आज्ञा है। तो भक्तगण कहते – बस, प्रसाद का कण मात्र ही बहुत है, अधिक लेकर क्या करेंगे? मिठाई और हलुवे में वे ऐसा नहीं कहते। पर करेले के समय लोग कहते – बस, एक कण जीभ पर रख लेने से ही हो गया। सिर पर रख लेना ही बहुत अच्छा है। इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति की भक्ति के साथ उसकी विषयोन्मुखी वृत्ति इतनी घुलमिल जाती है कि यह समझना कठिन हो जाता है कि इसमें कितना साधना-तत्त्व है और कितनी विषय-लालसा है। इसकी कसौटी यही है कि यदि आपके सामने बेस्वाद करेले का प्रसाद रख दिया जाय और आपको उसमें भी मिठास लगे, तो समझ लीजिए कि आप प्रसाद के प्रेमी थे। कथा में नौ रस न दिखाई पड़ें, तथापि आपको रस की अनुभूति हो, तो इसका अर्थ है कि कथा के सच्चे प्रेमी हैं।

रामायण में बार-बार आया है कि भगवान राम का चरित्र गाया जाता है। बड़ी सुन्दर बात है। पर इससे कई लोगों को बड़ा भ्रम हो जाता है। वे कहने लगते हैं कि रामायण गाने की वस्तु है, अत: उसे राग-स्वर-ताल और वाद्ययंत्र लेकर गाना चाहिए। बिल्कुल ठीक ! नारदजी वीणा पर भगवान का गुण गाते हैं। वीणा पर भगवान का गुण गाया जाय, तो वीणा धन्य हो जायगी। यदि हम भगवान के गुणगान में संगीत के वाद्यों का उपयोग करें, वे वाद्य धन्य हो जायेंगे। कण्ठ की मधुरता के द्वारा भगवान का चरित्र गाकर हम अपने कण्ठ को धन्य करेंगे। परन्तु प्रश्न उठता है – प्रिय क्या लग रहा है? रामायण पर गाने का अर्थ केवल वाद्ययंत्रों के साथ गाना ही नहीं है। हनुमानजी जब पहली बार भगवान से मिले, तो पूछा – आप कौन हैं? भगवान अपना परिचय देने के बाद बोले – मैंने अपना चरित गाकर सुना दिया –

आपन चरित कहा मैं गाई ।

कौन-से वाद्ययंत्र पर गाकर सुना रहे थे? क्या भगवान के गाने के साथ लक्ष्मणजी साथ में कोई बाजा भी बजा रहे थे? नहीं। रामायण में गायन शब्द का बड़ा व्यापक अर्थ है। इसीलिए हनुमानजी ने भगवान के चरणों को पकड़ लिया। प्रभु ने पूछा – तुमने यह कैसे मान लिया कि मैं ईश्वर हूँ? वे बोले – "प्रभो, आप ही के मुँह से एक ऐसा शब्द निकल गया ! आपने ही तो कहा कि मैंने अपना चरित्र गाकर सुनाया।" तो रामायण में यह गायन शब्द ऐसे-ऐसे प्रसंगों में है, जहाँ गायन की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

कागभुशुण्डि कथा सुना रहे हैं तो गोस्वामीजी ने कहा – कागभुशुण्डि ने गरुड़जी को गाकर सुनाया –

कागभुसुंडि गरुड़ प्रति गाई ।

अब उस कौवे के पास कौन-सा बाजा रहा होगा या कितने वाद्ययंत्रों का समूह रहा होगा। गायन तो यह भी है।

भगवान राम के चरित्र में काव्य लिखा जाय, तो कैसा होगा? मैथिलीशरण जी बड़े भक्त हृदय थे, उन्होंने कहा –

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है ।
कोई कवि बन जाए सहज सम्भाव्य है ।।

तुम्हारे चरित्र के लिए कविता करने की आवश्यकता नहीं है, तुम्हारा चरित्र ही ऐसा अद्‌भुत है कि जो भी कहा जायगा, वह कविता बन जायगी। प्रभु का चरित्र ही इतना संगीतमय है कि वह भक्तों के जीवन में, वाणी में, हृदय में एक दिव्य संगीत के रूप में गूँज रहा है। भगवान राम गायन करते हैं, हनुमानजी गायन करते हैं और यहाँ तक कि कौवा भी गा रहा है। राग-रागिनियों के साथ गाइए, तो राग-रागिनियाँ धन्य हो गईं। पर अन्त में अनेक राग-रागिनियों के स्थान पर एक ही राग रह जाय। भोजन में भगवान को भोग लगाइए पर षटरस के स्थान पर एक ही रस रह जाय। कौन-सा रस? गोस्वामीजी ने विनय-पत्रिका में इस ओर संकेत किया है। पूछा गया – भक्ति के संगीत में कितने रस हैं? बोले – भक्ति का तो एक ही रस है और एक ही राग है – अनुराग। बस, अनुराग का राग यदि जीवन में आ गया, तो आपकी सारी राग-रागिनियाँ ठीक; और यदि अनुराग का राग नहीं आया, तो आप चाहे किसी भी राग में गाते रहिये, उसमें गाने की कला-कुशलता आदि हो सकती है, पर अनुराग का रस नहीं है, तो वह सही राग नहीं है। गोस्वामीजी कहते हैं – जीवन में एक राम-रस आ जाने पर संसार के सारे रस फीके पड़ जाते हैं –

जो मोहि राम लागते मीठे । तौ नवरस षटरस-रस अनरस, ह्वै जाते सब सीठे ।। (विनयप., १६९)

मंत्र में चाहे दो अक्षर हों, दस अक्षर हों या बारह अक्षर हों, जप का अर्थ है उसे बार-बार दुहराना। एक सज्जन कीर्तन के बड़े विरोधी थे। बोले, ''ये लोग क्या कीर्तन करते हैं ! कोई आपके सिर पर आकर झाँझ बजाते हुए 'हरे राम हरे राम' करे, तो क्या किसी को नींद आयेगी? भगवान भी सोते हैं या नहीं?'' मैंने कहा – भगवान की नींद की चिन्ता आप मत कीजिए, आपको आ जाती है या नहीं आती?

मंत्र चाहे 'राम-राम' हो, या 'रां रामाय नम:' हो, या 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' हो, या 'श्रीकृष्ण शरणं मम' हो – प्रश्न यह है कि मंत्र-जप में भी उतना ही रस आता है क्या, जितना कि कथा में आता है? उस मिठास का अनुभव ही मंत्र-साधना का उद्देश्य है। पुनरुक्ति को साहित्य में एक बड़ा दोष माना जाता है। यदि एक बार भी एक ही शब्द को दुहरा दिया जाय, तो कवि लोग उसे दोष कहेंगे, परन्तु जप में तो एक ही शब्द को बार-बार दुहराया जा रहा है। जप में पुनरुक्ति की पराकाष्ठा होती है।

तो मनु कथाश्रवण, तीर्थयात्रा और जप में तल्लीन होते हैं। उस तल्लीनता में तपस्या की इतनी ऊँची स्थिति आती है कि अन्न छूट जाता है, फल छूट जाता है, जल छूट जाता है। उनकी साधना का जो वर्णन है, वह इतना कठिन है कि पढ़कर ही व्यक्ति आतंकित हो उठता है। कैसे सम्भव है? कैसे किया जाय? और इन साधनों का कोई अर्थ है क्या? कोई उद्देश्य है क्या? वहाँ यह भी लिखा हुआ है कि जब वे तपस्या करते हुए साधना करने लगे, तो दर्शन देने के लिये पितामह ब्रह्मा आ गये, भगवान विष्णु आ गये, भगवान शिव आ गये और बारम्बार पूछने लगे – तुम क्या चाहते हो? कई बार लोगों के मन में सन्देह होता है कि यह दर्शन आदि होता भी है या नहीं? आज का युग तो विशेष रूप से बुद्धिवादी युग है। जब कहा जाता है कि देवताओं का दर्शन हुआ या भगवान का दर्शन हुआ, तो कई लोग यह मानकर सन्तोष कर लेते हैं कि मन में जो बार-बार चिन्तन किया जाता है, वही दिखाई देने लगता है, परन्तु यह अधूरा सत्य है। जो लोग दर्शन के पथ के पथिक नहीं हैं, वे ऐसी ही भ्रम की बातें करते हैं। यदि दर्शन वैसा ही हो, जैसा आपने ध्यान किया है, तब तो आप कह सकते हैं कि यह हमारे मन की एक कल्पना है। पर आपके मन में ध्यान किसी का हो और आपके सामने कोई अन्य देवता प्रगट हों, तो इसे मन का खेल मानना ठीक नहीं होगा। इसे जो लोग मन का खेल मानते हैं, वे या तो बहुत ऊँची स्थिति में हैं या बहुत नीची स्थिति में। कहाँ है स्वर्ग, कहाँ है नर्क? विनय-पत्रिका में गोस्वामीजी कहते हैं – जैसे वृक्ष में लकड़ी का सारा फर्नीचर छिपा हुआ है, जैसे कपास में सारे वस्त्र छिपे हुए हैं, वैसे ही स्वर्ग, नरक और मोक्ष भी मन में ही हैं –

सरग नरक अपबर्ग चराचर बसत मध्य मन तैसे ।।

इसका ऐसा अर्थ मत ले लीजिएगा कि चलो छुट्टी मिली, अब नरक से डरने की कोई जरूरत नहीं। कहने मात्र से छुट्टी नहीं मिल जाती। इसका सांकेतिक अर्थ मुझे स्मरण आता है। जब मैं श्री उड़िया बाबाजी के चरणों में रहता था, तो एक सज्जन आए। वे बड़े प्रखर वेन्दाती थे। श्री उड़िया बाबाजी भी महानतम शुद्ध वेदान्ती थे। वेदान्त की पराकाष्ठा-विषयक कुछ बातें ऐसी हैं, जो साधारणतया बड़ी अटपटी हैं, इसीलिए उनके यहाँ प्रात:काल जब वेदान्त का सत्संग होता, तो वे भक्तों से कहते कि तुम लोगों को इस सत्संग में नहीं आना चाहिए। एक और सामूहिक सत्संग होता था, उस में सभी आ सकते थे। पर प्रात:काल चार बजे जो सत्संग होता था, उसमें वे भक्तों से कहते – तुम लोग दिन में आना। वे कहा करते थे – वेदान्त का सत्संग भक्तों के लिये बड़ा घातक है। ज्ञानी जब भक्ति सुने, तो उसमें कठिनाई नहीं है। पर यदि भक्त ने बिना सोचे-समझे ही वेदान्त श्रवण कर लिया, तो उसकी सारी भक्ति-भावना ही नष्ट होने लगेगी। क्योंकि जब यह सुनेंगे कि ये सारे रूप मिथ्या हैं, जो कुछ दिखाई देता है, वह सब माया है, ईश्वर निराकार है। तो उसके लिये समस्या हो जायगी, क्योंकि उसके सगुण-साकार भगवान तो बंशी बजा रहे हैं, हाथ में धनुष-बाण लिये हैं, बड़े सुन्दर हैं। इसलिये बात किस स्तर पर कही जा रही है, इसे बहुत कम लोग समझ पाते हैं। वे वेदान्ती सज्जन आए और दिन में सबके सामने ही पूछने लगे – ''महाराज, ये भक्त लोग जो दर्शन-वर्शन की बात किया करते हैं, मैं तो समझता हूँ कि यह सब उनके मन का ही खेल है। यह सब मानसिक ही होता है।'' बाबा ने पूछा – यह जो तुम मुझे देख रहे हो, यह मानसिक है या यथार्थ है? – नहीं महाराज, यह तो बिल्कुल यथार्थ है। – तुम यथार्थ हो या मानसिक हो? बोले – यथार्थ हूँ। बाबा ने कहा – ''भगवान का दर्शन इससे अधिक यथार्थ है। तुम इस चक्कर में मत पड़ो। यदि तुमको सब मन का खेल लगता है, तो वह भी खेल है।'' लोग मन की इतनी गलत व्याख्या कर लेते हैं।

यह जो सारा सृष्टि-विलास है, इसको क्यों न हम ईश्वर के मन का खेल मानें; क्योंकि यदि वह संकल्प मात्र से, बिना वस्तु के सृष्टि बनाये, तो उसके मन की सृष्टि में ही सब कुछ निहित है। ऐसी बात नहीं कि दर्शन नहीं होते। दर्शन होते हैं और संसार में जितना स्थूल दर्शन होता है, उससे भी अधिक प्रगाढ़ रूप में होता है। इसीलिये बाबा ने कहा कि इस व्यर्थ की बातों में मत पड़ो, अपने को धोखा मत दो कि वे लोग मन के चक्कर में पड़े हुए हैं और तुम ऊपर उठ गये

हो। वे तो बल्कि मन की उस सीमा तक पहुँचे हैं, पर तुम तो कहीं नहीं हो। रामायण में भी ऐसा ही लिखा हुआ है –

गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई।। ३/१५/३

जहाँ तक इन्द्रियाँ जायँ, जहाँ तक मन जाय, सब माया का खेल है। पर साधना आवश्यक है, साधना से लाभ बहुत है। आपने सुना होगा – गोस्वामीजी सुबह जब नित्य-कर्म को जाते थे और लोटे में जो जल बचता था, उसे एक वृक्ष के जड़ में डाल देते थे। कथा आती है कि उसमें एक भूत रहता था। उसने सोचा कि तुलसीदास मुझे ही जल पिलाते हैं। एक दिन वह उनके सामने प्रगट हो गया और बोला – मैं बहुत प्रसन्न हूँ, बोलो क्या चाहते हो? अब इस कथा को सुनकर आप लोग भूत-प्रेतों की खोज में न लग जाइएगा। वृक्ष की जड़ों में पानी डालना न शुरू कर दीजिएगा कि हमारे सामने भी प्रेत आकर कहे कि बोलो क्या चाहिए। बात कितनी मीठी है। **यदि व्यक्ति में विवेक हो तो भूत से भी भगवान को पा लेगा और अविवेकी हो तो भगवान से भी भूत ही माँगेगा।** गोस्वामीजी ने भूत को प्रसन्न करने की चेष्टा नहीं की, पर यदि वह प्रसन्न हो गया और बोला कि मैं अपनी शक्ति से तुम जो चाहो, पूरा करूँगा। तो उन्होंने कहा – मैं तो भगवान राम का दर्शन चाहता हूँ। प्रेत बोला – भाई, वह तो मेरे बस की बात नहीं है। हाँ, उपाय तुम्हें बता सकते हैं कि हनुमानजी तुम्हें भगवान का दर्शन करा सकते हैं। उसने बताया कि हनुमानजी कथा में नित्य आते हैं, तुम उनसे मिलो। गोस्वामीजी उनसे मिले और उनके द्वारा उन्हें भगवान राम का दर्शन हुआ। यह बात उनकी जीवनी में है और गोस्वामीजी विनय-पत्रिका (२६४) में भी स्मरण करते हैं –

तुलसी, तोको कृपालु, जो कियो कोसलपालु।
चित्रकूट को चरित्र, चेतु चित करि सो।।

चित्रकूट में उन्होंने भगवान का दर्शन किया। उन्होंने अनित्य से भी नित्य को पा लिया। उस भूत से छुट्टी पा ली और शाश्वत कालातीत भगवान को पाने में समर्थ हो गये। साधक के सामने अनेक ऐसे अनुभव आ सकते हैं, जिसके द्वारा वह लाभ भी ले सकता है और हानि भी। रावण जैसे व्यक्ति को साक्षात् शंकरजी दर्शन देने आ गये, ब्रह्माजी आ गये। शंकरजी लौटे, तो पार्वतीजी ने पूछा – रावण ने बड़ी तपस्या की थी। क्या माँगा? शंकरजी हँसकर बोले – रावण ने मुझसे माँगा कि मनुष्य के हाथ से मेरी मृत्यु हो –

रावन मरन मनुज कर जाचा।। १/४९/१

बड़े आश्चर्य की बात है। मृत्यु तो कभी-न-कभी होती ही है। उसने क्यों कहा कि मनुष्य के हाथ से मृत्यु हो। – नहीं पार्वती, उसने तो यह नहीं कहा। उसने कहा कि बन्दर और मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी के हाथ से मेरी मृत्यु न हो। उसने यह गणित किया कि मनुष्य और बन्दर को तो मैं ही मार डालूँगा। इसलिये इन दोनों को छोड़ औरों से न मरने का वरदान माँगूं। वह नासमझ यह नहीं समझ पाया कि उसने स्वयं यह निर्धारित कर लिया कि मृत्यु यदि अनिवार्य है, तो वह मनुष्य से मरे या वानर से। विवेकशून्य व्यक्ति अपने जीवन में क्या पाता है? कुम्भकर्ण ने छह महीने सोने का वरदान माँगा। वरदान तो केवल विभीषण ने माँगा –

गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु।।१/१७७

इसलिये जब कोई साधना करता है, तो मार्ग में उसे कई तरह के अनुभव होते हैं। मनु के सामने ब्रह्मा आए, विष्णु आये, शंकरजी आए और उन्होंने नहीं माँगा, इससे यह मत समझ लीजिएगा कि ब्रह्मा-विष्णु-शंकर छोटे थे, इसलिये नहीं माँगा। छोटे-बड़े का प्रश्न नहीं है। जो लोग किसी भौतिक वस्तु के लिए साधना करते हैं, वे भटके हुए नहीं हैं; उनका स्टेशन बीच में पड़ता है, मिल गया, तो वहीं रुक गये। पर आपको यदि अन्तिम स्टेशन तक जाना हो तो ! श्री उड़िया बाबा ने एक संस्मरण सुनाया था। जब वे वृन्दावन में रहते थे, तो एक बार उनके सामने भगवान की रासलीला प्रगट हो गई। बाबा ने अपनी आँखें मूँद लीं। जिस रासलीला की इतनी महिमा है, इतनी दिव्यता है, उसका उन्होंने दर्शन नहीं किया। इसका कारण यह है कि उन दिनों वे जिस तत्त्व -चिन्तन में संलग्न थे, उस निराकार-तत्त्व के चिन्तन में वह उन्हें व्यवधान-सा लगा। आपको यदि रासलीला में अधिक आनन्द आता है, तो बड़े प्रेम से बैठकर देखिए। कथा में आनन्द आता है, तो कथा में बैठिए। ध्यान में आनन्द आता है, तो ध्यान में बैठिए। आपका जो लक्ष्य है, उसके अनूकूल माध्यम का आप चुनाव कीजिए। इसलिये मनु ने यदि ब्रह्मा से, विष्णु से और शंकरजी से नहीं माँगा, इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं कि ये महान् नहीं हैं। मनु निराकार ब्रह्म को साकार रूप में चाहते थे। साधना में कई परीक्षाएँ होती हैं, कई प्रलोभन आते हैं और सच्चा साधक उनमें अडिग रहता है, अन्य कोई वस्तु नहीं चाहता। मनु को जो रूप चाहिये था, उस रूप की उपासना करते हुए, साधना में उन्हें कई तरह के अनुभव हुए, पर वे उस प्रलोभन में नहीं आए। जब उनके हृदय में व्याकुलता बढ़ी और लगने लगा कि इतने साधन होते हुए भी भगवान नहीं मिले, तब उनके अन्त:करण में कृपा की भावना का स्मरण हो आया। वे समझ गये कि इन समस्त साधनाओं के बाद भी हम भगवान को नहीं पा सकते। साधना में पहले महत्त्व-बुद्धि होती है, परन्तु बाद में जब यह लगा है कि ईश्वर जब मिलेगा, तो अपनी ही कृपा से मिलेगा, तब कहीं जाकर मनु को उनका दर्शन होता है।

❖ (क्रमशः) ❖

वीरकन्या हीरबाई

स्वामी जपानन्द

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी जपानन्दजी कुछ संस्मरणों तथा तीन पुस्तकों 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें', 'मानवता की झाँकी', 'आत्माराम की आत्मकथा' का हम धारावाहिक प्रकाशन कर चुके हैं। उन्होंने काठियावाड़ की कुछ कथाओं का भी बँगला में पुनर्लेखन किया था, जो हमें श्री ध्रुव राय से प्राप्त हुई हैं। उन्हीं रोचक तथा प्रेरणादायी कथाओं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

– १ –

दरबार अप्पा देवात मानो देहधारी यमराज ही था। उसके शरीर में असीम बल तथा स्वभाव में अत्यन्त क्रूरता थी और युद्धविद्या का वह अद्वितीय विद्वान् था। किसी में भी उसका विरोध करने का साहस न था। वह यदि अपने लाल गुड़हल के समान बड़ी-बड़ी आँखों को खोलकर किसी की ओर देखता, तो भय से उस व्यक्ति के शरीर से पसीना छूटने लगता था। और – उसकी प्रतिज्ञा भीष्म के समान अटल थी – जो कहता, वह करके दिखाता। काठी लोगों के अंचल में उसके कहीं भी उपस्थित होने पर सभी लोग उसे मान-सम्मान देते – परन्तु वह भय के कारण ही होता, क्योंकि उसे नाराज करने का अर्थ अपने यमलोक जाने की व्यवस्था करना।

सिंहों के निवास-स्थान गीर के जंगलों में स्थित तीन-चार छोटे गाँवों के ऊपर इस नरसिंह का आधिपत्य था। एक बार उसके एक सम्बन्धी राजा ने किसी कार्य के उपलक्ष्य में अपने गाँव चलाला (रसधार) में उसे तथा अन्य अनेक काठी लोगों को निमंत्रण देकर बुलाया था। सभा में अप्पा देवात को ही सभी लोग मान दे रहे थे – मानो वह काठीकुल का एकछत्र सम्राट् हो। काठी कयाटी ग्राम के अधिपति लाखा बाला भी वहाँ निमंत्रित होकर उपस्थित थे। युद्धविद्या या शारीरिक बल में वे देवात से किसी भी दृष्टि से कम न थे, पर उनके स्वभाव में क्रूरता न थी और न ही वे सत्ता के मद में चूर होकर अकारण ही किसी का अनिष्ट करने की बात सोच सकते थे। उनमें अपनी श्रेष्ठता का अभिमान न था, बल्कि उनके प्राणों में उदारता और धर्म में निष्ठा थी। काठी लोगों की इस प्रकार भय-भक्ति देखकर उनके वीर-हृदय को आघात पहुँचा और चुप रहने में असमर्थ रहकर वे बोल उठे, "जरा बताओ तो – पाँव चाटने की प्रवृत्ति कब से काठी लोगों का 'धर्म' बन गया है। काठी लोगों की सभा में सभी लोग समान होते हैं, उनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। इसके सिवा आप लोग एक व्यक्ति के घर में आये हैं, परन्तु आप लोगों का व्यवहार देखकर ऐसा भ्रम होता है कि मानो यह घर अप्पा देवात का ही हो!"

कोई बोला, "शान्ति: ! शान्ति: ! लाखा बाला, यह क्या करते हो? जान-बूझकर ततैयों के छत्ते को खोद रहे हो!"

"हाँ, हाँ ! यह क्या कर रहे हो? यह तो भाई अपनी ही मृत्यु को आमंत्रित किया जा रहा है!" – दूसरा बोल उठा।

"लगता है कि तुम कोई अनजान व्यक्ति हो, नहीं तो यहाँ पर ऐसी बात उठाकर व्यर्थ ही अशान्ति को न्यौता नहीं देते।" – तीसरा व्यक्ति बोला।

अन्य कई लोग भी कई तरह की बातें कहने लगे।

नाराज होकर देवात की दोनों आँखें भयानक रक्तवर्ण की हो गयी थीं और उसका पारा काफी चढ़ गया था। अपने दाहिने हाथ से तलवार की मूठ को भींचकर और बायें हाथ से बारम्बार अपनी मूछों पर ताव देते हुए वह घोर कर्कश स्वर में बोला, "लगता है कि तुम्हारे भीतर बहुत तेल हो गया है, जान लेना, देवात तुम्हारा तेल निकाल कर छोड़ेगा! हाँ!" यह कहते हुए उसने अपने हाथ का कुसुम्बा[१] फेंक दिया।

चारों ओर से सभी लोग एक स्वर में बोल उठे, "यह क्या करते हो? यह क्या करते हो? कोई ऐसी भी प्रतिज्ञा करता है क्या? शान्ति! शान्ति!" काठी गृहपति ने आकर काफी अनुनय-विनय करके तात्कालिक रूप से शान्ति की स्थापना करायी।

लाखा बाला ने अपने गाँव में जाकर सबको इस घटना की सूचना दी और आक्रमण का सामना करने के लिये यथासाध्य तैयार रहा।

– २ –

बहुत दिन बीत जाने पर भी जब देवात के आक्रमण का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया, तो लाखा बाला ने सोचा कि उसने नशे की झोंक में जो कुछ कहा था, वह भूल चुका है। यह सोचते ही उनकी सतर्कता ढीली पड़ गयी। एक दिन वे किसी कार्यवश अपने पड़ोस के किसी गाँव में गये हुए थे। संध्या के पूर्व ही उनका लौट आने का विचार था, परन्तु कार्य पूरा न हो पाने से वैसा हो नहीं सका। देवात ने उसी रात लाखा के गाँव पर आक्रमण किया और वहाँ उसने जी भरकर मारपीट तथा लूटपाट की। नेतृत्व-विहीन लाखा की

१. दूध तथा अफीम से बना एक तरह का अवलेह। काठी तथा राजपूतों में यह प्रथा थी कि सभा में या किसी मित्र या सम्बन्धी के मिलने पर एक-दूसरे को कुसुम्बा चाटने को दिया जाता था। यह मित्रता तथा प्रीति का द्योतक है। ग्रामीण अंचलों में यह अब भी प्रचलित है। यदि कोई इसे अस्वीकार करे या लेकर फेंक दे, तो इससे शत्रुता व्यक्त होती है और परिणामस्वरूप युद्ध आदि तक हो जाते हैं।

(शेष अगले पृष्ठ पर नीचे)

स्वामी विवेकानन्द का वैज्ञानिकों से संवाद

नवीन दीक्षित, होशंगाबाद

(प्रस्तुत लेख भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त अध्येता वृत्ति पर कार्य करते हुए लिखा गया है। – सं.)

स्वामी विवेकानन्द विज्ञान और आध्यात्मिकता के समन्वय के अभिलाषी थे। वे इस तथ्य से पूर्णत: अवगत थे कि दोनों के बीच मैत्री तब तक असम्भव है, जब तक कि इन दोनों में पूर्ण संवाद स्थापित न हो जाय। बहुआयामी व्यक्तित्व होने से वे स्वयं ही इस प्रकार के संवाद की स्थापना में पूर्ण समर्थ थे। उनकी इसी उत्कण्ठा के फलस्वरूप उनका कुछ वैज्ञानिकों के साथ संवाद स्थापित हुआ था। यहाँ दृष्टान्त स्वरूप विद्युत्-शक्ति के महान् आविष्कारक विख्यात अमेरिकी वैज्ञानिक निकोला टेस्ला के साथ उनके संवाद को प्रस्तुत किया जा सकता है। दोनों का संवाद तथा टेस्ला का स्वामीजी के व्याख्यानों में रुचि लेना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि टेस्ला अपने वैज्ञानिक अनुसन्धानों में अत्यधिक व्यस्त रहते थे। स्वामीजी की एक प्रशंसिका न्यूयार्क-वासिनी कुमारी कार्बिन के घर एक रात्रिभोज के समय दोनों में पहली बार भेंट और बातें हुईं। इसके पूर्व स्वामीजी द्वारा लिखित 'आकाश' (ईथर) शीर्षक लेख प्रतिष्ठित पत्रिका 'न्यूयार्क मेडिकल टॉइम्स' के फरवरी १८९५ अंक में छप चुका था। एक वैज्ञानिक पत्रिका में प्रकाशित आकाश तथा देश के अन्तर्सम्बधों की व्याख्या करनेवाले इस लेख को टेस्ला ने अवश्य पढ़ा होगा। टेस्ला सम्भवत: पहले से ही स्वामीजी के व्याख्यान सुनते थे। अस्तु, कुमारी कार्बिन के घर पर दोनों के बीच गम्भीर वार्तालाप हुआ था। इस वार्तालाप के टेस्ला पर पड़े प्रभाव की झलक हमें स्वामीजी द्वारा लिखित १३ फरवरी के इस पत्रांश में मिलती है, "श्रीयुत टेस्ला वैदान्तिक प्राण, आकाश और कल्प के सिद्धान्त को सुनकर बिल्कुल मुग्ध हो गए। उनके कथनानुसार आधुनिक विज्ञान केवल इन्हीं सिद्धान्तों को ग्रहण कर सकता है। आकाश और प्राण – ये दोनों जगद्व्यापी महत्, समष्टि-मन, ब्रह्मा या ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं। टेस्ला का विश्वास है कि वे गणितशास्त्र की सहायता से यह प्रमाणित कर सकते हैं कि जड़ और शक्ति – दोनों ही स्थितिक ऊर्जा (Potential Energy) में रूपान्तरित हो सकते हैं।"[१] टेस्ला को जिस नवीन सिद्धान्त की झलक प्राप्त हुई थी, उसमें स्वामीजी भी उनके साझीदार थे। इसी कारण स्वामीजी ने टेस्ला से मिलने का प्रयास किया। इसके प्रमाणस्वरूप स्वामीजी द्वारा फरवरी, १८९६ के प्रथम सप्ताह में टेस्ला को लिखित निम्नलिखित पत्र प्रस्तुत किया जा सकता है –

प्रिय महोदय,

यदि मैं आपसे अधिक अपेक्षा नहीं कर रहा हूँ, तो कृपया क्या आप मुझे ऊर्जा के संरक्षणवाद और ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति

१. विवेकानन्द साहित्य, २००४, खण्ड ४, कोलकाता, पृ. ३८३-४

पिछले पृष्ठ का शेषांश

सेना उसका सामना नहीं कर सकी।

आखिरकार वह लाखा के राजमहल में जा पहुँचा। आंगन में खड़े होकर वह सिंहनाद करता हुआ बोला, "ओ वीर लाखा! ऐसे छिपे रहने से भी क्या काम चलता है? बाहर निकलकर मैदान में आओ – एक बार मैं भी देख लूँ कि तुम्हारे पास कितना बाहुबल है!"

लाखा की युवती कन्या हीरबाई सामने के दालान में खड़ी-खड़ी देवात का कारनामा देख रही थी। बोली, "अप्पा लाखा गाँव में नहीं हैं; दूसरे गाँव में गये हुए हैं।"

"वह भी अच्छा है! आने पर कह देना कि अप्पा देवात मिलने आया था। तुमसे भेंट न हो पाने से अपना चिह्न छोड़ गया है।" – यह कहते हुए देवात ने अपने विकट हास्य से पूरे राजमहल को कँपा डाला। भय से अन्य महिलाएँ काँप उठीं। वे लोग बार-बार हीरबाई को भीतर आ जाने के लिये कहने लगीं, परन्तु वह बोली 'कुछ भी नहीं हुआ है' और उसी प्रकार दीवार के सहारे खड़ी रही।[२]

इसके बाद देवात लौटने लगा, परन्तु सामने ही एक अति सुन्दर काठियावाड़ी घोड़ा बँधा हुआ देखकर वह अपना लोभ संवरण नहीं कर सका। आज भी किसी भी काठी व्यक्ति के लिये ऐसा करना कठिन है। घोड़ा भी तलवार के समान ही काठी लोगों का अत्यन्त प्रिय है, उनकी आपत्ति-विपत्ति का सहज सम्बल है। हाथ के भाले को दीवार के सहारे रखकर देवात घोड़े के पाँव की रस्सी खोलने के लिये झुका। महिलाओं से भला देवात को क्या भय हो सकता था? हीरबाई उसकी इस मूर्खता पर खिलखिला कर हँस पड़ी और क्षण भर में उसके बल्लम को उठाकर बोली, "सावधान, देवात अप्पा!" और भाले के एक ही प्रहार से उसकी पीठ को फाड़ते हुए सीने को बींध डाला। हीरबाई बल्लम चलाने में दक्ष थी। इस कला में उसे अपने पिता से विशेष शिक्षा प्राप्त हुई थी।[३] ❑❑❑

२. काठीजाति के इतिहास में हम देखते हैं कि शत्रुता चाहे जितनी भी प्रबल रही हो, उन लोगों ने कभी स्त्रीजाति पर अत्याचार नहीं किया।

३. राजपूतों के समान ही काठी लोग भी पहले अपनी कन्याओं को अस्त्र चलाने की शिक्षा दिया करते थे।

-विषयक नवीनतम सिद्धान्तों की किताबों की सूची प्रदान कर सकते हैं? क्या आधुनिक विज्ञान में इस प्रकार का सिद्धान्त है कि प्रकाश के मण्डल के परे विद्युत के कम्पन अधिक सूक्ष्म हैं? मैं पत्र की अपेक्षा व्यक्तिगत साक्षात्कार अधिक पसन्द करूँगा, यद्यपि मुझे भय है कि आप पूर्णत: व्यस्त होंगे। तो भी यदि आपके लिये मुझे एक साक्षात्कार देना सम्भव हो, तो मैं अनुगृहीत रहूँगा। आपका दिया हुआ कोई भी समय मुझे अनुकूल रहेगा। पिछली रात कुमारी कार्बिन के निवास पर हुए वार्तालाप के लिये अनेक धन्यवाद के साथ –

आपका, विवेकानन्द[२]

उपर्युक्त पत्र के जवाब में टेस्ला ने जो पत्र लिखा, उससे यह प्रमाणित हो जाता है कि टेस्ला भी स्वामीजी से मिलने के लिए उतने ही उत्सुक थे। पत्र इस प्रकार है –

प्रिय महानुभाव,

चूँकि पत्र द्वारा आपके प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है और चूँकि मैं आपसे मिलने की खुशी पुन: प्राप्त करना चाहता हूँ, इसलिए अगले सप्ताह में आपकी सुविधानुसार किसी भी दिन आपको अपने ४५ ईस्ट ह्यूस्टन स्ट्रीट स्थित प्रयोगशाला में मुलाकात के लिए आमंत्रित करता हूँ।

आपका विश्वासपात्र
एन. टेस्ला[३]

स्वामीजी इस मुलाकात को लेकर काफी उत्साहित थे। इसका कारण भी उन्होंने १३ फरवरी के अपने पत्र में स्पष्ट किया है, "(टेस्ला द्वारा प्रस्तावित) गणितशास्त्र के इस नवीन प्रमाण को समझने के लिये मैं आगामी सप्ताह उनसे मिलने जानेवाला हूँ। ऐसा होने से वैदान्तिक ब्रह्माण्ड-विज्ञान अत्यन्त दृढ़ नींव पर स्थित हो सकेगा।"[४] टेस्ला से पूछे प्रश्नों पर भी उनके इसी पत्र से प्रकाश पड़ता है, "आजकल मैं वैदान्तिक ब्रह्माण्ड-विज्ञान और प्रलय-विज्ञान पर काफी काम कर रहा हूँ। मैं स्पष्ट रूप से आधुनिक विज्ञान के साथ उनका पूर्ण सामंजस्य देखता हूँ और एक की व्याख्या से दूसरे की भी हो जाएगी। बाद में प्रश्नोत्तर के रूप में मेरा एक पुस्तक लिखने का विचार है। उसका पहला अध्याय ब्रह्माण्ड-विज्ञान पर होगा, जिसमें वैदान्तिक सिद्धान्त और आधुनिक विज्ञान का सामंजस्य दिखाया जायेगा।

ब्रह्म = Absolute (अक्षर या निरपेक्ष सत्ता)

महत् या ईश्वर = Primal Creative Energy (आदि सृष्टिशक्ति)

प्राण और आकाश = Force (शक्ति) and Matter (जड़)

"प्रलय-विज्ञान की व्याख्या केवल अद्वैत के दृष्टिकोण से होगी। अर्थात् द्वैतवादी कहते हैं कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा सूर्यलोक में जाती है, वहाँ से चन्द्रलोक में और वहाँ से विद्युत-लोक में। वहाँ से किसी पुरुष के साथ वह ब्रह्मलोक में जाती है। अद्वैतवाद के अनुसार जीव न कहीं आता है, न जाता है और ये सब लोक या जगत् के स्तर आकाश और प्राण के रूपान्तरित परिमाण मात्र हैं। अर्थात् सबसे नीचा और सबसे घना सूर्यलोक है जो दृश्य जगत् ही है, जिसमें प्राण भौतिक शक्ति के रूप में और आकाश इन्द्रियग्राह्य भौतिक पदार्थ के रूप में प्रकट होता है। इसके बाद चन्द्रलोक है, जो सूर्यलोक को चारों ओर से घेरे है। यह चन्द्रमा नहीं है, अपितु देवताओं का निवास-स्थान है अर्थात् प्राण यहाँ मानसिक शक्तियों के रूप में और आकाश तन्मात्रा या सूक्ष्म भूत के रूप में प्रकट होता है। इसके परे विद्युत-लोक है अर्थात् वह अवस्था, जहाँ प्राण आकाश से प्राय: अभिन्न है और यह बताना कठिन हो जाता है कि विद्युत जड़ है या शक्ति। इसके बाद ब्रह्मलोक है, जहाँ न प्राण है, न आकाश, परन्तु दोनों ही चित्-शक्ति अर्थात् आदि-शक्ति में विलीन हैं, और यहाँ प्राण और आकाश के न रहने से जीव को सम्पूर्ण विश्व समष्टि-महत् या समष्टि-मन के रूप में प्रतीत होता है। यह भी पुरुष या सगुण विश्वात्मा की अभिव्यक्ति है, न कि निर्गुण अद्वितीय परमात्मा की, क्योंकि उसमें भेद सूक्ष्म रूप से विद्यमान है। इसके पश्चात् जीव को पूर्ण एकत्व की अनुभूति होती है, जो कि अन्तिम लक्ष्य है। अद्वैत के अनुसार जीव के सम्मुख इन सब अनुभूतियों का प्रकाश एक के बाद एक क्रमश: होता है, परन्तु जीव स्वयं न कहीं आता है, न जाता है और इसी प्रकार इस वर्तमान जगत् की भी अभिव्यक्ति हुई है। इसी क्रम से सृष्टि और प्रलय होते हैं – केवल एक का अर्थ है 'पीछे जाना' और दूसरे का 'बाहर निकलना'।"[५]

उपर्युक्त पत्र से कुछ अनुमान लगता है कि स्वामीजी प्रकाश के मण्डल से विद्युत-मण्डल की सूक्ष्मता के अपने वैदान्तिक मत की टेस्ला से पुष्टि कर लेना चाहते थे। साथ ही वेदान्तियों के प्राण और आकाश को आधुनिक विज्ञान की ऊर्जा और पदार्थ के समरूप जानकर अगले चरण के रूप में

२. प्रबुद्ध भारत (अंग्रेजी मासिक), मार्च २००९, अद्वैत आश्रम कोलकाता, पृ. ४२ में श्री सोमनाथ मुखर्जी के "स्वामी विवेकानन्द और निकोला टेस्ला : नवीन खोजें" शीर्षक शोध-आलेख में उद्धृत मूल अंग्रेजी पत्र का हिन्दी अनुवाद। निकोला टेस्ला विषयक यह पूरा अंश मूलत: उन्हीं के आलेख पर आधारित है।

३. वही, पृ. ४१ से (मूल अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित)

४. विवेकानन्द साहित्य, सं. २००४, खण्ड ४, पृ. ३८४

५. वही, पृ. ३८४-३८५

इनकी एकता अथवा अन्त:परिवर्तनीयता के गणितीय निदर्शन के लिये टेस्ला से मदद की अपेक्षा कर रहे थे। अपनी व्यस्तताओं के कारण स्वामीजी टेस्ला से नहीं मिल सके और टेस्ला भी कोई गणितीय आधार प्रदान नहीं कर सके। वैसा सम्भव भी नहीं था, क्योंकि तब का विज्ञान ऊर्जा को पदार्थ से भिन्न मानने के कारण ऐसी स्थिति में भी नहीं था। यद्यपि स्वामीजी के देहान्त के बाद एक यहूदी नवयुवक अल्बर्ट आइंस्टीन ने अपने प्रख्यात सूत्र $E=mc^2$ द्वारा पदार्थ और ऊर्जा की समरूपता को सिद्ध कर दिया। उनके अनुसार पदार्थ ऊर्जा का ही घनीभूत रूप है। भौतिक विज्ञान में चार प्रधान ऊर्जाएँ हैं – गुरुत्वाकर्षण ऊर्जा, विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा, तीव्र परमाण्विक ऊर्जा और मन्द परमाण्विक ऊर्जा। आइंस्टीन अपने जीवन के अन्तिम समय तक इनको एक ही प्रधान ऊर्जा के एक सर्व-समावेशी सिद्धान्त के अन्तर्गत समावेशित करने के लिए प्रयासरत थे। यद्यपि उन्हें जीवनपर्यन्त इसमें सफलता नहीं मिली, अब भी नहीं मिल सकी है।

स्वामीजी के उक्त पत्र से ज्ञात होता है कि वैदान्तिक धारणाओं से टेस्ला काफी प्रभावित थे। इस प्रभाव की चरम परिणति उनके १९०७ ई. के एक लेख में देखने को मिलती है, "बहुत पहले मनुष्य ने जाना कि सभी दृश्यमान जड़ पदार्थ एक प्रधान पदार्थ से आते हैं, जिससे देश भरा हुआ है। वह आकाश या दीप्तिमान ईथर है, जिस पर जीवनदाता प्राण या आदिशक्ति अनादि चक्रों में कार्य करती है। प्रधान तत्त्व तीव्र वेग से घूमने से स्थूल पदार्थ बन जाता है इसके विपरीत जब आदिशक्ति हटती है, तब गति थम जाती है और पदार्थ ओझल होकर प्रधान तत्त्व में लौट जाता है।"[६]

उक्त लेख में टेस्ला ने आकाश और प्राण का शब्दश: प्रयोग किया है। स्वामीजी के पूर्वोद्धृत पत्र से इसकी पूरी समानता है। और अधिक स्पष्ट उद्धरण इस प्रकार है, "हमने सारे जगत् को पदार्थ और शक्ति या प्राचीन भारतीय दार्शनिकों की भाषा में अकाश और प्राण में पर्यवसित कर दिया। अब आकाश और प्राण को उनके मूल तत्त्व में पर्यवसित करना होगा। इन्हें मन नामक उच्चतर सत्ता में पर्यवसित किया जा सकता है। मन – महत् अथवा सार्वभौमिक विचार-शक्ति से प्राण और आकाश दोनों की उत्पत्ति होती है। प्राण या आकाश की अपेक्षा विचार सत्ता की सूक्ष्मतर अभिव्यक्ति है। विचार ही स्वयं इन दोनों में विभक्त हो जाता है। शुरू में यह सर्वव्यापी मन ही था और इसने स्वयं व्यक्त, परिवर्तित और विकसित होकर आकाश और प्राण ये दो रूप धारण किये और इन दोनों के सम्मिश्रण से सारा जगत् बना।"[७]

टेस्ला के अतिरिक्त स्वामीजी लार्ड केल्विन के भी सीधे सम्पर्क में आए। स्वामीजी महान् भारतीय भौतिकविद्, विद्युतशास्त्री वैज्ञानिक डॉ. जगदीश चन्द्र बोस के बड़े प्रशंसक थे, जिन्होंने बेतार-प्रणाली और पौधों की जीवन-क्रिया को पशुओं के समान सिद्ध करनेवाले और वनस्पति विज्ञान से सम्बन्धित क्रिस्कोग्राफ नामक वृद्धिमापक यंत्र का आविष्कार किया था। नवीन विश्व सभ्यता के निर्माण में विज्ञान और धर्म के समन्वय की भूमिका के शीर्षस्थ पैरोकारों में भारत का प्रतिनिधित्व करनेवाले ये दो महान् भारतीय, १९०० ई. में हुई पेरिस-प्रदर्शनी में आये थे। वहाँ स्वामी विवेकानन्द ने धर्म-इतिहास सम्मेलन में और डॉ. बोस ने भौतिक-शास्त्र की अन्तर्राष्ट्रीय सभा के समक्ष भाषण दिए थे। स्वामीजी डॉ. बोस का भाषण सुनने गए थे और उन्होंने अपने एक पत्र में सम्मेलन पर डॉ. बोस के प्रभाव का प्रशंसनीय वर्णन किया है। स्वामीजी और डॉ. बोस का सीधा संवाद नहीं हुआ था, यद्यपि स्वामीजी की शिष्या भगिनी निवेदिता और डॉ. बोस के बीच मित्रता थी। निवेदिता ने उनके ग्रन्थ की पाण्डुलिपि में संशोधन किया था और कई तरह से उनकी मदद की थी। उनके वैज्ञानिक कार्यों पर स्वामीजी का सीधा पड़ा प्रभाव भले ही परिलक्षित न हो, किन्तु भारतीय दर्शन और विशेषकर वेदान्त के तो वे स्पष्टत: ऋणी थे। १० मई १९०१ को रॉयल इन्स्टीट्यूट के समक्ष भाषण देते हुए बोस ने कहा, "मैंने इस संध्या आपके समक्ष जड़ एवं चेतन पदार्थों पर तनाव एवं श्रम के परिणाम के इतिहास के हस्ताक्षरों का ब्यौरा प्रस्तुत किया है। ये हस्तलिपियाँ कितनी समान हैं। इनमें इतना साम्य है कि एक को दूसरे से पृथक् करना कठिन है।... इस प्रकार की घटनाओं में ऐसी सीमा-रेखा कैसे खींची जा सकती है कि यहाँ तक भौतिक पदार्थ है तथा इसके आगे शरीर-क्रिया प्रारम्भ होती है?... क्या ये परिणाम पदार्थ के किसी सामान्य एवं सदा विद्यमान गुण को प्रकट नहीं करते? क्या ये यह नहीं बताते कि चेतन वस्तुओं में दिखाई देनेवाली प्रतिक्रियाओं के लक्षण जड़ पदार्थों में भी दिखाई देते हैं?... यदि ऐसा है तो हम नये उत्साह के साथ ऐसे रहस्यों के अन्वेषण में अग्रसर होंगे, जिन्हें हम अभी तक समझ नहीं सके हैं।... विज्ञान की प्रगति सदा आपात-विरोधी सिद्धान्तों की स्पष्टतर आधारभूत एकता की दिशा में होती है।... जब मैंने इन स्वनिर्मित प्रमाणों के मूक साक्षी को पाया तथा अपने में सभी पदार्थों का समावेश करनेवाले सर्वव्यापी एकत्व के एक पक्ष को – प्रकाश की लहरों में कम्पित हो रहे कणों को, प्राणियों के चातुर्य से परिपूर्ण पृथ्वी को और हमारे ऊपर चमकते ज्योतिर्मय सूर्यों को देखा, तब मैं अपने पूर्वजों द्वारा तीस शताब्दी पूर्व गंगातट पर उद्घोषित सन्देश को पहली बार थोड़ा बहुत समझ सका था – 'इस

६. प्रबुद्ध भारत (अंग्रेजी मासिक) के मार्च २००९ अंक, पृ. ४३ से हिन्दी में अनूदित

७. विवेकानन्द साहित्य, सं. २००६, खण्ड २, पृ. २२-२३

जगत् की समस्त विविधताओं में एकत्व का दर्शन करनेवाले ही चरम सत्य के अधिकारी होते हैं, अन्य कोई नहीं।' "[८]

स्पष्टत: यहाँ समस्त अस्तित्व के एकत्व का भाव अद्वैत वेदान्त की शिक्षाओं को ही इंगित करता है।

स्वामीजी भारत में विज्ञान की शिक्षा के प्रचार के बड़े अभिलाषी थे। विज्ञान की शिक्षा और उसके समाज में उचित विनियोग के द्वारा ही वे गरीबी के उन्मूलन को सम्भव मानते थे। ऐसी दिव्य दृष्टि उन्हें पश्चिम जाने के पूर्व ही प्राप्त हो चुकी थी। उनके विचारों की सदाशयता और क्रान्तिकारी योजनाओं ने आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक महान् उद्योगपति जमशेदजी टाटा को भी प्रेरणा प्रदान की थी। शिकागो जाते समय जहाज पर टाटा उनके सहयात्री थे। २३ नवम्बर, १८९८ को स्वामीजी को लिखा पत्रांश, उन पर पड़े स्वामीजी के प्रभाव को रेखांकित करता है, "मुझे आज भी बहुत स्पष्ट तौर पर याद है कि भारत में आत्मसंयम त्याग और तपस्या के विचार विकसित हों, इस विषय में आपकी क्या सोच थी।... भारत में एक शोध संस्थान की स्थापना करने के विषय में मुझे आपके ये विचार भलीभाँति याद हैं। आपने निश्चित ही इस संस्थान के बारे में पढ़ा या सुना होगा। ... मेरा मानना है कि इस तरह के महान कार्य का नेतृत्व एक सबल और सक्षम हाथों में होना चाहिए... और मैं नहीं जानता कि स्वामी विवेकानन्द से ज्यादा कोई और व्यक्ति इस कार्य के लिये उपयुक्त हो सकता है।"[९] स्वामीजी ने इस पत्र का क्या उत्तर दिया, यह तो अज्ञात है, किन्तु वे अपने जीवन के उच्चतर ध्येय के प्रति समर्पित होने के कारण जमशेदजी का प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सके थे।

भारत में वैज्ञानिक गवेषणाओं के प्रणेता और 'भारतीय विज्ञान प्रगति संघ' के संस्थापक डॉक्टर महेन्द्रलाल सरकार, श्रीरामकृष्ण के चिकित्सक के रूप में उनके सम्पर्क में आए थे। डॉ. सरकार स्पष्टवादी, अति युक्तिवादी और विज्ञान के कट्टरतम उपासक थे। उन्होंने भी श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक अनुभवों की सत्यता को स्वीकार किया था।

विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधियों और स्वामीजी के बीच हुए उपर्युक्त वार्तालापों पर ध्यानपूर्वक मनन करने पर इनकी विविधताएँ स्पष्ट हो जाती हैं। जहाँ टेस्ला से हुआ स्वामीजी का संवाद – विज्ञान तथा अध्यात्म के समन्वय के विशुद्धतम तकनीकी अथवा परातात्त्विक पहलू को प्रदर्शित करता है, वहीं डॉ. सरकार के ऊपर पड़ा आध्यात्मिक प्रभाव मानो एक तरह से विज्ञान की गति को दिशा प्रदान करनेवाला है। डॉ. बोस की शोधों में जड़-चेतन-सृष्टि के संक्रमण की क्षीण होती रेखाएँ, समग्र अस्तित्व के एकत्व के अद्वैतवादी सिद्धान्त की ही पुष्टि करती है। जमशेदजी टाटा की प्रेरणा में हमें त्याग और सेवायुक्त आध्यात्मिक दृष्टि-सम्पन्न विज्ञान की सामाजिक और आर्थिक भूमिका के दर्शन होते हैं, जिसमें उद्यमिता में अतिशय लाभप्राप्ति का स्थान राष्ट्र-निर्माण और सेवा ने ले लिया है। सारांशत: इस सर्वेक्षण में हमें विज्ञान एवं अध्यात्म के समन्वय के कई आयाम प्राप्त होते हैं। ❏

८. विज्ञान और आध्यात्मिकता, स्वामी बुधानन्द, अद्वैत आश्रम कोलकाता, सं. १९९८, पृ. ३९-४३

९. दैनिक भास्कर, भोपाल संस्करण, मार्च २०१०, पृ. ४

माँ से प्रार्थना

जितेन्द्र कुमार तिवारी

द्वेष-राग सब दूर करो माँ,
मन के सारे दोष हरो माँ ।।

मानव-मन यह अति दुर्बल है,
कोई नहीं यहाँ सम्बल है ।
भोग-लालसा की तृष्णा में,
फँसता जाता मन पल-पल है ।।
आया मैं हूँ तव चरणों में
जीवन में उल्लास भरो माँ ।
मन के सारे दोष हरो माँ ।।

अहं-भाव का मैं हूँ रोगी,
तुच्छ वासनाओं का भोगी ।
मुक्ति मार्ग पर चल न सकूँगा,
तुम यदि नहीं सहारा दोगी ।।
मेरे जीवन के आंगन में,
तुम करुणा बनकर पसरो माँ ।
मन के सारे दोष हरो माँ ।।

जीवन में उत्साह नहीं है,
जग-वैभव की चाह नहीं है ।
रहा शान्ति के लिये भटकता,
कृपा बिना निर्वाह नहीं है ।।
अन्धकारमय सब कुछ दिखता,
चित में दिव्य प्रकाश भरो माँ ।
मन के सारे दोष हरो माँ ।।

अबूझमाड़ का विराट् सेवायज्ञ

स्वामी अनुभवानन्द

(बस्तर का अबूझमाड़ अंचल भारत के सर्वाधिक पिछड़े हुए क्षेत्रों में एक है। वहीं स्थित नारायणपुर में पिछले २५ से भी अधिक वर्षों से अविराम कार्यरत रामकृष्ण मिशन आश्रम की रजत जयन्ती के अवसर पर यह विशेष आलेख वहीं से प्राप्त हुआ है। – सं.)

श्रीरामकृष्ण और माँ श्रीसारदा देवी का संसार कितना सुन्दर और आनन्दमय हो सकता है, यह बात दण्डकारण्य वनांचल में स्थित छत्तीसगढ़ राज्य के इस रामकृष्ण मिशन आश्रम का परिदर्शन किये बिना समझा नहीं जा सकता। श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदादेवी और स्वामी विवेकानन्द के 'शिवज्ञान से जीवसेवा' का जो विशाल कर्मयज्ञ यहाँ जारी है, उसे अपनी आँखों से देखे बिना रामकृष्ण संघ के सेवायज्ञ की यथार्थ धारणा असम्भव है। बृहत् दण्डकारण्य में स्थित यह अबूझमाड़ वनांचल अब भी मानो भगवान की एक अपूर्व लीलाभूमि है। प्राचीन युगों के तपोवन की धारणा पर आधारित यह उदार आश्रम अपने शान्त समाहित परिवेश के द्वारा किसी भी व्यक्ति के मन को नैसर्गिक आनन्द से परिपूर्ण कर देगा।

लगभग तीन वर्ष पूर्व जब मैं भोगभूमि बम्बई से इस हरे-भरे पहाड़ों-जंगलों से आच्छन्न पवित्र स्वर्गभूमि में आया, तब इस अकल्पनीय सुन्दर आश्रम को देखकर बारम्बार भगवान श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ की कृपा का बोध होने लगा।

लगभग पचीस वर्षों पूर्व २ अगस्त १९८५ ई. के दिन इस आश्रम ने अपनी यात्रा प्रारम्भ की। परन्तु इस पुण्यभूमि की मिट्टी इतनी उपजाऊ थी कि मात्र कुछ वर्षों के भीतर ही इस आश्रम ने सभी क्षेत्रों में इतनी अद्भुत प्रगति की कि मानो एक छोटे-से बीज ने एक ऐसे विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लिया, जिसकी सुभग-शीतल छाया-तले आज हजारों-लाखों निर्धन, असहाय लोग आनन्दपूर्वक सुख-विश्राम पा रहे हैं।

१९८४ ई. के प्रारम्भ में भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी जब बेलूड़ मठ का परिदर्शन करने आयीं, तो उन्होंने पूज्य भरत महाराज और तत्कालीन संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज से अनुरोध किया कि रामकृष्ण मिशन मध्यभारत के बस्तर अंचल में स्थित अति दुर्गम क्षेत्र में स्थित अबूझमाड़ के आदिवासी लोगों के बीच शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और अन्य सेवा-कार्यों के लिये एक आश्रम की स्थापना करे। अनुरोध के साथ उन्होंने आश्वासन भी दिया कि इस कार्य में केन्द्र तथा राज्य सरकार की ओर से हर तरह का सहयोग प्रदान किया जायेगा। तदुपरान्त बेलूड़ मठ के निर्देशानुसार रायपुर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के तत्कालीन सचिव स्वामी आत्मानन्दजी – इस दुर्गम अंचल से परिचित कुछ लोगों को साथ लेकर यहाँ पधारे। यहाँ आकर और स्थानीय वनवासियों की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों को देखकर उनका हृदय करुणा से अभिभूत हो उठा और वे यथाशीघ्र यहाँ एक आश्रम बनाने की योजना में लग गये।

४००० वर्ग किलोमीटर के सघन जंगलों के बीच स्थित यह अबूझमाड़ क्षेत्र पहाड़ों तथा नदियों से परिपूर्ण है, जिसके बीच-बीच में आदिवासियों के छोटे-छोटे गाँव बसे हुये हैं। इन लोगों की जीवन-यात्रा में धन का कोई विशेष महत्त्व नहीं है, क्योंकि इनकी आवश्यकताएँ अत्यल्प हैं। उन दिनों इन लोगों की आधुनिक जीवन-धारा से जुड़ने की कोई इच्छा या कल्पना नहीं थी। उनकी जीवन-यात्रा जंगली फल-मूल तथा शिकार पर निर्भर थी और उनमें से अधिकांश लोग सलफी नामक एक ताड़जातीय वृक्ष से उत्पन्न होनेवाली ताड़ी को पीकर मस्त रहते थे। शिक्षा, स्वास्थ्य, मकान या खेती के विषय में उनकी कोई धारणा ही न थी। निवास के लिये वे लोग पत्थरों को सजाकर एक दीवार जैसा खड़ा कर लेते और ऊपरी भाग वृक्ष की पत्तियों तथा सूखी घास से ढँक देते। खाने के नाम पर उनके लिये प्रचुरता से उपलब्ध थे – जंगली कन्द-मूल-फल और शिकार किये हुये हर तरह के पशु-पक्षियों का मांस। जंगल में उन्हें यदि कोई अभाव महसूस होता था, वह था नमक का। इसकी पूर्ति के लिये वे लोग बाँस से झाड़ू बनाते तथा एक तरह के वृक्ष पर होनेवाले चिरंजी के दाने एकत्र करते और वर्ष में एक-दो बार नगर में आकर उनके बदले में नमक ले जाते।

यद्यपि लगभग ४ वर्ष पूर्व नारायणपुर को जिला घोषित कर दिया गया है, तथापि आज भी यह एक छोटा-सा नगर या कस्बा मात्र है; पर २५ वर्षों पूर्व तो यहाँ केवल कुछ व्यापारियों की बस्ती और अबूझमाड़ का प्रवेश-द्वार मात्र था। अबूझमाड़ शब्द का अर्थ है – अज्ञात पहाड़ी अंचल। स्वाधीन भारत के इस इलाके में तब तक कोई भी सरकारी नाप-जोख या सर्वेक्षण नहीं हो सका था और दीर्घकाल तक इस दुर्गम क्षेत्र की उन्नति न हो पाने के कारण अब इस अंचल के काफी बड़े इलाके में माओवादी फैल गये हैं।

तत्कालीन मध्यप्रदेश सरकार द्वारा नारायणपुर में प्रदत्त ६७ एकड़ जमीन पर बेलूड़ मठ के निर्देशानुसार स्वामी आत्मानन्दजी तथा उनकी टोली ने एक टीनशेड बनाकर ही इस आश्रम की शुरुआत की, ताकि अबूझमाड़ के निवासियों की सोचनीय अवस्था में बदलाव लाया जा सके।

परन्तु अगस्त की घनघोर वर्षा के बीच इस दुर्गम अंचल में सेवा-कार्य का श्रीगणेश करना कोई बच्चों का खेल नहीं था।

जो जगह सरकार से मिली थी, वह पूरी तौर से जंगलों-झाड़ियों और साँप-बिच्छुओं आदि भरा हुआ था। उस भूखण्ड में दिन के समय भी विषैले साँप घूमते हुए दृष्टिगोचर हो जाते थे। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों तथा भयंकर परिवेश के बीच २ अगस्त १९८५ को एक टिनशेड के भीतर श्रीरामकृष्ण का एक छोटा-सा देवालय बनाकर नारायणपुर रामकृष्ण मिशन आश्रम के भावी नारायण-सेवा-कार्य का श्रीगणेश किया गया।

स्थानीय नागरिकों ने स्वामी आत्मानन्दजी को सावधान करते हुये कहा था, "इस अबूझमाड़ के वनवासियों के बीच कार्य करना इतना आसान नहीं होगा, क्योंकि ये लोग किसी प्रकार की सेवा आदि ग्रहण नहीं करते, ये लोग अपने बाल-बच्चों को पढ़ाने में कोई रुचि नहीं है, आधुनिक चिकित्सा में इनका विश्वास नहीं है, जमीन पर हल चलाना ये बिल्कुल भी नहीं चाहते और ये लोग स्वयं दिन भर सलफी के नशे में डूबे रहने के अभ्यस्त हैं। इसके अलावा ये लोग अपने रीति-रिवाजों में किसी तरह की दखलन्दाजी पसन्द नहीं करते।" इन समस्त बाधा-विघ्नों के बावजूद स्वामी आत्मानन्दजी ने इस आश्रम और इसके माध्यम से सेवा-कार्य का शुभारम्भ किया।

इस प्रकार ४००० वर्ग किलोमीटर में फैले अबूझमाड़ के प्रवेशद्वार रूपी नारायणपुर में इस पूरे अंचल के विकास का प्रारम्भिक कार्य आरम्भ हुआ। परन्तु अबूझमाड़ में भीतर जाने का रास्ता और वहाँ का भौगोलिक परिवेश इतना भयंकर था कि वहाँ जाकर सेवा-कार्य चलाना सहज-साध्य नहीं था। उन दिनों राज्य-सरकार के राजस्व विभाग या वन विभाग के लेखाओं में इस क्षेत्र का कोई माप-जोख लिखा नहीं था। चारों ओर निर्धनता तथा कुपोषण का साम्राज्य था। नर हो या नारी, वहाँ के सारे निवासी वस्त्र के नाम पर कौपीन मात्र धारण करते थे। सम्पत्ति के नाम पर उनके पास होती थी - घासफूस की एक झोपड़ी, उसके भीतर मिट्टी के कुछ टूटे-फूटे बर्तन या फिर थोड़े-बहुत सूखे महुए आदि फल या कुछ कन्द-मूल।

इस अंचल में आश्रम निर्माण का मुख्य उद्देश्य था – शिक्षा, स्वास्थ्य-सेवा तथा कृषि-प्रशिक्षण के माध्यम से आदिवासियों की उन्नति करना। इसके अतिरिक्त एक अन्य कारण भी था – वनवासियों की गरीबी के शोषण से रक्षा करना। इन सरल भोले-भाले वनवासियों का किस प्रकार शोषण होता था, अब मैं वही बताने जा रहा हूँ।

आदिवासी लोग घने जंगलों में से एक तरह का कीमती चिरंजी फल एकत्र किया करते थे, जिसकी कीमत उन दिनों ६०-७० रुपये प्रति किलो हुआ करती थी। परन्तु ये लोग जब फल इकट्ठा करके उसे नारायणपुर के बाजार में लाते, तो वहाँ के व्यवसायी एक किलो चिरंजी के बदले एक किलो नमक मात्र दिया करते। इसी प्रकार जंगल से आये हुये मधु, अच्छे फूलझाड़ू, कन्द-मूल तथा बाँस से निर्मित वस्तुएँ जब बिकने के लिये बाजार में आतीं, तो उनका उचित मूल्य नहीं मिल पाता। इसके अलावा जब वे लोग नमक-तेल आदि नित्य उपयोग की वस्तुएँ खरीदते, तो उसमें भी वे ठगे जाते। गरीबों को यथाशीघ्र इस शोषण के चंगुल से मुक्त करने के लिये आश्रम के श्रीगणेश के कुछ महीनों बाद ही ७ दिसम्बर, १९८५ ई. को प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम के. एम. चांडी के हाथों 'उचित मूल्य क्रय-विक्रय केन्द्र' की नींव रखी गयी। उचित मूल्य की वह दूकान अब एक विशाल रूप धारण करके असंख्य लोगों की सेवा में निरत है। ८ दिसम्बर को तत्कालीन सह-संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्दजी ने 'आवास-गृह'-समूहों का उद्घाटन किया। २६ जनवरी, १९८६ को प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल बोरा ने 'विवेकानन्द-आरोग्य-धाम' नाम से अस्पताल का उद्घाटन किया। ८ मार्च को अबूझमाड़ के भीतर नारायणपुर से लगभग ३० किलोमीटर दूर घोर वन में स्थित इरकभट्टी नामक गाँव में एक सेवाकेन्द्र की स्थापना हुई। १९ मई को अबूझमाड़ के लगभग मध्य में स्थित कुतुल ग्राम में सेवाकेन्द्र आरम्भ हुआ। ३ जून को इन दोनों केन्द्रों में उचित मूल्य की दुकानें खोली गयीं। ४ जून को इरकभट्टी और ५ जून को कुतुल में नलकूप और आश्रम-विद्यालय शुरू किया गया। इसके बाद २ जुलाई, १९८६ को नारायणपुर आश्रम में ही मात्र ४० छात्रों के साथ पहली से चौथी कक्षा तक का आवासीय विद्यालय खोला गया। १६ जुलाई को 'विवेकानन्द वनवासी युवा प्रशिक्षण केन्द्र' (वोकेशनल ट्रेनिंग कोर्स) शुरू किया गया। इसमें कृषि, सिलाई, मोटर-मरम्मत, बढ़ई का काम, इलेक्ट्रीशियन आदि के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी। इसी दौरान अबूझमाड़ के भीतर आकाबेड़ा, कच्चापाल तथा कुन्दला ग्रामों में भी तीन और सेवाकेन्द्र तथा आवासीय विद्यालय खोले गये।

अबूझमाड़ की जमीन इस कार्य में इतनी उपजाऊ सिद्ध हुई कि इस प्रकार यहाँ जो बीज बोया गया था, उसने समस्त जनश्रुतियों को गलत सिद्ध करते हुए, कुछ वर्षों के भीतर ही क्रमशः एक विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लिया। केवल २५ वर्षों बाद, आज इस आश्रम की रजत-जयन्ती वर्ष की परिपूर्ति के अवसर पर यदि हम सिंहावलोकन करें, तो देखेंगे कि श्रीरामकृष्ण-श्रीमाँ तथा स्वामीजी की कृपा से इस आश्रम की बहुमुखी गतिविधियाँ किस तरह सुन्दर रूप से इन आदिवासियों के बीच सभी क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में तथा एक अमोघ शक्ति के साथ सर्वांग सुन्दर रूप से कार्य किये जा रही है और उनके सर्वांगीण उन्नति में आमूल-चूल योगदान कर रही हैं।

इस आश्रम द्वारा वर्तमान में केवल आदिवासियों के लिये जो सेवाकार्य चल रहे हैं, उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा

रहा है। नारायणपुर में 'रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विद्यापीठ' नाम से १ से १२ वीं तक का जो आवासीय विद्यालय चल रहा है, जिसमें केवल आदिवासी बालक-बालिकाएँ ही शिक्षा पा रहे हैं। इनमें से ७५ फीसदी अति पिछड़े माड़िया जाति के आदिवासी हैं। २००९-१० के सत्र में ५४५ बालक तथा २८० बालिकायें, इस प्रकार कुल मिलाकर ८२५ विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। यद्यपि स्कूली शिक्षा पानेवाली इस अंचल की यह पहली पीढ़ी है, तथापि इनका परीक्षाफल देखकर दंग रह जाना पड़ता है। यहाँ के दसवीं तथा बारहवीं के छात्र छत्तीसगढ़ बोर्ड की परीक्षाओं में अच्छे अंकों से पास होते हैं। इनका परीक्षाफल देखकर हमें आनन्द तथा गर्व का अनुभव होता है।

अबूझमाड़ के अन्दर आकाबेड़ा, कुतुल, कच्चापाल, इरकभट्टी तथा कुन्दला में स्थित सभी ५ आवासीय विद्यालयों के नाम 'विवेकानन्द-विद्या-मन्दिर' हैं। इनमें से दो में पहली से आठवीं तक की पढ़ाई होती है और बाकी ३ प्राइमरी स्कूल हैं। यहाँ ४६४ बालक तथा १४५ बालिकायें, अर्थात् कुल मिलाकर ६०९ बच्चे शिक्षा पा रहे हैं। इनमें भी ८५ प्रतिशत अति पिछड़े माड़िया जनजाति के हैं। इन पाँचों स्कूलों के विद्यार्थी ९वीं कक्षा तथा उसके आगे की पढ़ाई के लिये नारायणपुर के 'विवेकानन्द-विद्यापीठ' में चले आते हैं। हम पहले ही बता आये हैं कि इन सबके रहने-खाने, पहनने-ओढ़ने तथा पढ़ाई-लिखाई का सारा खर्च आश्रम ही वहन करता है और साथ ही आवश्यकतानुसार अच्छी चिकित्सा की व्यवस्था भी करता है।

आश्रम के छात्र-छात्राएँ खेलकूद में भी काफी योग्यता दिखाते हैं और कई खेलों में पूरे राज्य में सर्वोत्कृष्ट सिद्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त आश्रम से संलग्न स्वामी आत्मानन्दजी द्वारा ही संस्थापित 'विश्वास' एक सहयोगी संस्था भी है। विश्वास (VISHWAS) का अर्थ है 'विवेकानन्द इंस्टीच्यूट ऑफ सोशल हेल्थ वेलफेयर एंड सर्विस'। अत्यन्त व्यापक कर्मधारा वाली यह संस्था भी मिशन के ही निर्देशन में चलती है। इसके तहत ओरछा ग्राम में 'माँ सारदा विद्या-मन्दिर' के नाम से केवल बालिकाओं के लिये एक आवासीय मिडिल स्कूल है, जिसमें १ से ८ तक पढ़ाई होती है। इस सहकारी संस्था – विश्वास के तत्त्वावधान में अबूझमाड़ के १०० गाँवों में लगभग विगत २५ वर्षों से 'महिलाओं तथा शिशुओं' के कल्याणार्थ व्यापक सेवाकार्य चलाये जा रहे हैं।

नारायणपुर आश्रम में स्थित 'विवेकानन्द-आरोग्य-धाम' के अन्तर्गत एक ३० बिस्तरों वाला अस्पताल चलाया जाता है। साथ ही इसके बहिर्विभाग तथा वाहन-चिकित्सालय के माध्यम से प्रतिवर्ष हजारों-लाखों रोगियों की सेवा होती है।

हमारे स्कूलों में केवल आदिवासी तथा अबूझमाड़ी बालक-बालिकाएँ ही पढ़ाई कर पाते हैं, अत: स्थानीय लोगों के विशेष अनुरोध पर एक मुफ्त कोचिंग सेंटर भी शुरू किया गया है, जिसमें इस समय १३०० बालक-बालिकाएँ पढ़ रहे हैं। इन सभी शिक्षार्थियों को किताबें, कापियाँ, पेन, ड्रेस तथा सुबह का नाश्ता आश्रम की ओर से मुफ्त में उपलब्ध कराया जाता है।

हम पहले ही बता आये हैं कि यहाँ के आदिवासियों के लिये आश्रम की ओर से एक उचित मूल्य की दूकान भी चलायी जाती है। इस विशाल क्रय-विक्रय केन्द्र के माध्यम से हम नारायणपुर तथा अबूझमाड़ के भीतर स्थित बाकी ६ केन्द्रों की आवश्यकताएँ भी पूरी करते हैं।

आश्रम से करीब दो किलोमीटर दूर हमारा कृषि-फार्म तथा एग्रिकल्चर ट्रेनिंग सेंटर है। ५५ एकड़ के इस कृषि-फार्म का नाम है – 'ब्रेहीबेड़ा कृषि-विज्ञान-केन्द्र'। इस केन्द्र के द्वारा बहुत-से किसानों को उच्च कोटि के बीज, कृषि-यंत्र तथा रासायनिक खाद मुफ्त दिये जाते हैं और आधुनिक कृषि की शिक्षा भी दी जाती है। साथ ही यह केन्द्र इस अंचल के बहुत-से गाँवों के निवासियों को भी उन्नत कृषि की शिक्षा प्रदान करता है और उनकी खेती में भी सहायता पहुँचाता है।

यह आश्रम पहले से ही अपने 'वोकेशनल ट्रेनिंग' के माध्यम से विविध प्रकार के 'धन्धों' की शिक्षा देता रहा है। अगली फरवरी से शुरू होनेवाले आई. टी. आई. में और भी १६ प्रकार के 'काम-धन्धे' सिखाये जायेंगे। आगामी कुछ ही वर्षों में सिखाये जानेवाले कार्यों की संख्या ३२ हो जायगी।

इसके सिवा बहुत-से गाँवों के गरीब लोगों की कई तरह से सेवा की जाती है। जैसाकि खेती में सुविधा के लिये स्टाप डैम बनवाना, जलाशय या तालाब खुदवाना, आवागमन की सुविधा हेतु सड़क बनवाना और वृक्षारोपण करवाना, आदि आदि।

श्रीरामकृष्ण का विशाल नयनाभिराम मन्दिर मानो इस आश्रम का प्राणकेन्द्र है। प्रतिदिन गोधूलि की वेला में समस्त साधु-ब्रह्मचारी और छात्र-कर्मचारी जब एक साथ प्रार्थना-भवन में बैठकर आरती और भजन गाते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो नारायणपुर के समस्त जीवन्त नारायण एकसुर में साक्षात् नारायण की आराधना कर रहे हैं। यहाँ के ५ छात्रावासों के लगभग ८०० छात्र-छात्राएँ जब दोपहर तथा रात के भोजन के पूर्व एक-स्वर में अपने अपूर्व कण्ठ से गीता-पाठ करते हैं, तब एक दिव्य परिवेश की सृष्टि होती है। जब मैं कक्षा १० से १२ तक के छात्रावास के बच्चों के साथ निवास करता हूँ और उनके साथ बैठकर भोजन-ग्रहण करता हूँ, उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ के परिवार के विराट् भोग द्वारा नारायण-सेवा के माध्यम से उनकी एक अपूर्व लीला चल रही है। नारायणपुर के रामकृष्ण मिशन आश्रम की ओर से हम आप सभी को इस आनन्दोत्सव के यज्ञ में सम्मिलित होने का आवाहन करते हैं। ❑❑❑

कर्मयोग – एक चिन्तन (२)

स्वामी सत्यरूपानन्द

(प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मिशन आश्रम, राजकोट, गुजरात में दिया था। इसका टेप से अनुलिखन पूना की सीमा माने और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

अर्जुन भगवान से कहते हैं, हे प्रभु! मेरे लिये जो श्रेयस्कर है, उसे आप मुझे बताइये। अर्जुन यह नहीं पूछ रहे हैं कि हे प्रभु, मैं जीतूँगा या हारूँगा, मुझे राज्य मिलेगा या नहीं मिलेगा, मैं कर्ण से बदला ले सकूँगा या नहीं ले सकूँगा? दुर्योधन ने जो इतना अपमान किया है, उसका मेरे बड़े भाई बदला ले सकेंगे या नहीं ले पायेंगे? इनमें से कोई भी प्रश्न उनके मन में नहीं हैं। जबकि इसके पहले भगवान उनको गाली भी देते हैं –

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।। गीता-२/३

– श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन, यह क्लीवता, नपुंसकता, कायरता को छोड़ो। यह तेरे जैसे व्यक्ति के लिये शोभा नहीं देता। अपनी हृदय की निकृष्ट दुर्बलता को छोड़कर युद्ध के लिये खड़े हो जाओ।

यद्यपि भगवान ने एक तरह से उन्हें धिक्कारा भी। एक क्षत्रिय को क्लीव, नपुंसक कहना बहुत बड़ा अपमान है। फिर भी अर्जुन एक ही बात भगवान से पूछते हैं, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है – '**यत् श्रेयः स्यात् तत् मे निश्चितम् ब्रूहि**' – हे प्रभु, मेरे जीवन के लिये, जो कल्याणकर है, उसे आप निश्चित रूप से निःसंदेह कहिये। ऐसी अर्जुन की विवेकशील मनोवृत्ति है। अत: गीता को समझने के लिये हमें भी अर्जुन जैसी मनोवृत्ति लानी होगी।

अब प्रश्न उठता है कि यह श्रेय क्या है? जब तक जीवन का लक्ष्य श्रेय नहीं होगा, तब तक गीता या कोई भी धर्मशास्त्र हमारे जीवन में सहायक नहीं होगा। सांसारिक शास्त्र को पढ़कर सांसारिक उपलब्धि हो सकती है, किन्तु जहाँ तक जीवन की सार्थकता का प्रश्न है, वह सांसारिक विधाओं से प्राप्त नहीं होगा। हमारे ऋषीगण परम वैज्ञानिक थे। प्राचीनकाल के ऋषियों ने मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन कर मनुष्य के मन की वृत्तियों को बहुत अच्छी तरह से समझ लिया था और उसके साथ ही संसार के स्वरूप को भी अच्छी तरह से समझ लिया था। इसलिये उनके पास जीवन की समस्याओं का सम्पूर्ण और सार्थक समाधान था।

कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता को इस संसार के बारे में कहते हैं –

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतत्,
तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरो अभिप्रेयसो वृणीते,
प्रेयो मंदो योगक्षेमात् वृणीते ।।

अर्थात् – श्रेय और प्रेय परस्पर मिले हुये के सदृश मनुष्य के पास आते हैं। (नीर-क्षीर विवेकी हंसवत) बुद्धिमान पुरुष विचार कर उन दोनों को अलग-अलग कर लेता है। प्रेय की अपेक्षा अधिक अभिष्ट होने के कारण विवेकी श्रेय का ही वरण करता है। किन्तु मंदमति मूढ़ योगक्षेम हेतु प्रेय का ही वरण करता है।

इस श्लोक में संपूर्ण जीवन की समस्याओं का समाधान है। ऋषि कहते हैं कि संसार में तुम्हारे सामने श्रेय और प्रेय दोनों आयेगा। यह जो हमको संसार दिख रहा है, इसमें इंद्रियों के विषयों से जो मिलता है, वह प्रेय है। इस प्रेय का वरण कौन करता है, कौन इसे चाहता है? ऋषि कहते हैं कि जो मंदबुद्धि के लोग हैं, वे इस प्रेय को चाहते हैं। क्यों चाहते हैं इसे? 'योगक्षेमात् वृणीते' – योग-क्षेम हेतु इस प्रेय का वरण करते हैं। योग कहते हैं, जो न मिला हो उसको प्राप्त करने की इच्छा और क्षेम कहते हैं, जो मिला है उसको सुरक्षित रखने का प्रयत्न। तो जो मंदबुद्धि के लोग हैं, जिनको संसार में और सुख की आशा है और वे उसी में डूबे हैं, वे प्रेय चाहते हैं। गीता की भाषा में जो आसुरी प्रकृति के लोग हैं, वे मंदबुद्धि हैं और वे योग-क्षेम की आशा से प्रेय का वरण करते हैं।

श्रेय कौन चाहता है? कश्चिद् धीरः – कोई धीर, कोई विवेकी व्यक्ति श्रेय का वरण करता है। ये धीर शब्द गीता और उपनिषदों में बहुत बार आया है। धीर व्यक्ति कौन है? धीर व्यक्ति वह है, जो अपने कल्याण के लिये प्रेय की अपेक्षा श्रेय का वरण करता है। यदि हमने जीवन में श्रेय का वरण किया है, तो हमें गीता सुननी-पढ़नी चाहिये, इससे हमारा परम कल्याण होगा। श्रेय क्या है? श्रेय माने श्रेष्ठ, जो श्रेष्ठ सुख है, आनन्द है, वह हमें जीवन में शाश्वत रूप से प्राप्त हो जाय। वह जिसका कभी विलोप न हो, जो कभी कम न हो, ऐसा नित्य सुख हमें मिल जाये। इसे श्रेय कहते हैं। गीता के शब्दों में –

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।। ६.२२

– जिसे प्राप्त करके उससे अधिक दूसरे किसी लाभ की कामना नहीं रहती तथा जिस अवस्था में व्यक्ति विकट संकट, दुख से

भी विचलित नहीं होता।

श्रेय प्राप्त करने से हम उपरोक्त अवस्था को प्राप्त होंगे। जब ऐसा हमें प्राप्त हो जायेगा, तो हमारा जीवन सार्थक हो जायेगा। हम सभी लोग जो यहाँ विद्यमान हैं, अपने जीवन में स्थायी सुख चाहते हैं। हम सभी चाहते हैं कि जीवन में लेशमात्र भी कोई दु:ख न आवे और हमें शाश्वत सुख की प्राप्ति हो। इसके लिये हमें श्रेय-प्राप्ति का प्रयत्न करना होगा। इसकी प्राप्ति का क्या उपाय है? वह उपाय गीता में बताया गया है।

डॉक्टरों के पास मटेरिया मेडिका नाम की एक किताब होती है। जिसमें दवाइयों के विषय में लिखा रहता है कि कौन-सी दवा, किस रोग में दी जाती है। जब डॉक्टरों को किसी रोगी को देखकर कुछ कठिनाई महसूस होती है, तब वे लोग उस पुस्तक को खोलकर देखते हैं कि कौन-कौन-सी दवाईयाँ इस रोग के लिये उपयोगी हैं, वे उस दवा को रोगी को देते हैं।

भगवान कृष्ण ने देखा कि अर्जुन का मोह रूपी रोग बड़ा कठिन है और सामान्य चिकित्सा से ठीक नहीं होगा। इसकी विशेष चिकित्सा करनी पड़गी, तीव्र दवा देनी पड़ेगी। इसलिये भगवान ने अर्जुन को पहले तीव्र दवा दे दी। वह तीव्र दवा मानव-जीवन और सारे शास्त्रों का सार है।

गीता के दूसरे अध्याय का 'स्थितप्रज्ञ दर्शन' ५४ से ७२ वें श्लोक तक, जिसको सांख्य निष्ठा कहते हैं। सांख्य माने ज्ञान। ज्ञान के द्वारा जीवन में ऐसी स्थिति प्राप्त की जा सकती है कि मनुष्य दु:खों से सर्वथा मुक्त हो जाये और परमानन्द प्राप्त कर ले। अर्जुन को यह 'स्थितप्रज्ञ लक्षण' बहुत अच्छा लगा। इसमें भगवान ने अर्जुन को सांख्यनिष्ठा और ज्ञान की बात बतायी। इस-इस प्रकार करोगे तो तुम स्थितबुद्धि को प्राप्त हो जाओगे तथा इसी जीवन में जीवन्मुक्ति का अनुभव कर सकोगे। तुम सब प्रकार के दु:खों से मुक्त हो जाओगे। तुम्हें स्थायी सुख की प्राप्ति हो जायेगी।

हमको यह बात पढ़कर अच्छी लगती है, किन्तु हम कितना भी पढ़ लें, अगर जीवन में उसका आचरण नहीं करेंगे तो उसका कुछ भी लाभ हमें नहीं मिलेगा। अर्जुन ने ज्ञाननिष्ठा तो सुन ली, बहुत अच्छा लगा। पर उनका सन्देह नहीं मिटा। इसलिये वे भगवान से अपनी शंका के समाधान हेतु निवेदन करते हैं।

गीता का तीसरा अध्याय जिसका नाम 'कर्मयोग' है, वह अर्जुन के प्रश्न से प्रारम्भ होता है। यह अर्जुन की शंका का प्रतीक है। अर्जुन का प्रश्न हम-सबकी वृत्ति का द्योतक है। मनोविज्ञान की दृष्टि से जब आप विचार करेंगे, अपने मन को समझने का प्रयत्न करेंगे, तो देखेंगे कि ठीक अर्जुन के मन की जो स्थिति थी, वही हमारे मन की भी स्थिति है। हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में छोटा रास्ता (शार्टकट) चाहते हैं। क्या हम श्रेय चाहते हैं? अगर अर्जुन केवल श्रेय चाहते होते, तो तीसरे अध्याय का कोई प्रयोजन ही नहीं था। अर्जुन क्या प्रश्न करते हैं? –

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।। ३/१

हे जनार्दन! यदि आपको कर्म की अपेक्षा बुद्धियोग, ज्ञानयोग श्रेयस्कर मान्य है, तब आप मुझे क्यों इस घोर कर्म में लगा रहे हैं? जब ज्ञानप्राप्ति से मनुष्य संसार के सभी दुखों से मुक्त होकर अनन्त शक्ति प्राप्त करेगा, तब इस कर्म के झंझट में आप मुझे क्यों फँसा रहे हैं? अर्जुन ने ज्ञान को बिल्कुल नहीं समझा। आप और हम उसी स्थिति में हैं। जब तक जीवन के कर्तव्यकर्म हमें झंझट लग रहे हैं, तो जानकर रखिये, हम चाहें या न चाहें हमको हजारों जन्म लेना पड़ेगा। जब तक कर्म हमें जीवन में झंझट लगेंगे और हम उनकी उपेक्षा करके उन झंझटों से भागना चाहेंगे, उनसे छुटने का प्रयत्न करेंगे, तो वह पलायन है। अपने कर्तव्यों को छोड़कर जीवन में हम सुख-शान्ति पाना चाहेंगे यह कभी-भी संभव नहीं है। अर्जुन के प्रश्न से यहाँ स्पष्ट है कि अर्जुन अभी अपने जीवन में परमज्ञान प्राप्त करने के लिये तैयार नहीं थे। परम सुख-शान्ति प्राप्त करने को तत्पर नहीं थे। अगर अर्जुन ऐसा चाहते तो द्वितीय अध्याय में भगवान ने जब सांख्यनिष्ठा कही, सांख्ययोग, ज्ञानयोग बताया, तब अगर अर्जुन उसे हृदयंगम कर लेते, तो तुरन्त अपना कवच उतार देते, गांडीव धनुष फेंक देते, रथ से उतर जाते और भगवान को प्रणाम करके यह कहते हुये चले जाते कि मैंने जीवन का सत्य समझ लिया है कि मैं वही नित्य-शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ। अब इस लड़ाई-झगड़े की, इस युद्ध के झंझट की आवश्यकता नहीं है, मैं अपनी साधना के लिये जा रहा हूँ, उसी में डूबने का प्रयत्न करूँगा। कैसे? जैसा कि वेदान्त कहता है – आसुप्ते: आमृते: कालं नयेत वेदान्त चिन्तया – जब तक नींद न आ जाये, जब तक तुम्हारी मृत्यु न हो जाये, तब तक जीवन वेदान्त के चिन्तन में बिताना चाहिये।

❖ **(क्रमश:)** ❖

माँ सारदामणि के चरणों में

स्वामी निर्लेपानन्द

(माँ श्री सारदा देवी दैवी-मातृत्व की जीवन्त विग्रह थीं। उनके अनेक शिष्यों तथा भक्तों ने उनकी मधुर-पावन स्मृतियाँ लिपिबद्ध कर रखी हैं। बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' से इस लेख का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

(पिछले अंक से आगे)

माँ को लोकगुरु का कार्यभार लेना होगा, इसीलिये ठाकुर ने स्वयं ही माँ को विभिन्न बीजमंत्र बता दिये थे कि ये बाद में उपयोगी होंगे। माँ के देहत्याग के बाद शरत् महाराज ने स्पष्ट रूप से कहा था, "तुम लोग निश्चित जानो कि माँ ने तुम लोगों में से जिस-जिस को जो-जो कहा है, वह अक्षरश: सत्य होगा। ठाकुर और माँ की सत्ता – चिर सत्ता है। वे थे, हैं और रहेंगे। तुम लोगों के लिये भय की कोई बात नहीं है।"

१९२० ई. की जुलाई महीने की घटना है। माँ के एक दीक्षित शिष्य – एक मुंसिफ उद्‌बोधन के मुख्य द्वार पर आकर भी माँ के सद्य:विरह के ताप से किसी भी तरह भीतर प्रवेश नहीं कर पा रहे थे। अन्तत: संध्या-आरती के बाद भावग्राही शरत् महाराज स्वयं ही बैठक से उठकर गये और बरामदे में निरन्तर रुदन कर रहे उस भक्त की छाती तथा सिर पर धीरे-धीरे हाथ फेरते हुए उसे शान्त करके भीतर ले आये और बोले, "उनके समान क्या तुम हममें से किसी को पाओगे? उनके समान वे ही हैं। आओ, भीतर आओ। माँ का प्रसाद लो, शान्त होओ।" शरत् महाराज के मुख से कभी कोई निरर्थक वाक्य नहीं निकला। उन्हीं की आन्तरिक वाणी है, "ठाकुर और माँ अभेद हैं। तुम लोग भी बाद में समझोगे। जो माँ का आशीर्वाद पाकर धन्य हुए हैं, उन्हें अब खेद कैसा? उन्हें तो ठाकुर का ही स्पर्श मिला है। अब कार्य में लग जाओ। लोग तुम्हें देखकर अवाक् हो जायँ। सदा स्वामीजी को समक्ष रखकर चलो। योग्य बनो।"

ठाकुर हिमगिरि हैं। माँ प्रारम्भ में महेश के मस्तक पर स्थित होकर उनके जटाजाल में अवरुद्ध थीं। सिर पर रखने की चीज थीं। पूजा की वस्तु थीं। शिव के अंगीभूत थीं। फिर शिव से ही प्रकट हुई थीं। इस चलमान गतिमान जगत् में लीलामयी-माँ मानो हिमालय से उत्थित, धरापावनी गंगाजी की जलधारा हैं। श्रीरामकृष्ण चिदात्मा हैं और माँ चित्शक्ति हैं। ठाकुर ही माँ हैं और माँ ही ठाकुर हैं। सारदा की सार-वस्तु हैं श्रीरामकृष्ण। रामकृष्ण का सार हैं श्रीमाँ। ठाकुर की काया माँ की काया हैं। दोनों की एक ही काया है। दोनों की वाणी में ही भ्रान्त मानव के लिये अभ्रान्त सूत्र हैं।

नरेन्द्र आदि के आगमन-काल में श्रीरामकृष्ण मानो समाधि-सिन्धु प्राय: स्थिर हो चुके जल थे। श्रीमाँ उन्हीं का लीलामय रूप – उन्हीं की तरंग हैं। तरंग पर तरंग उठती रही। कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारत में मातृभाव का प्रसार हुआ। श्रीरामकृष्ण वाद्य हैं और माँ उसी वाद्य की सुमधुर मनोहारी रंग-बिरंगी मर्मस्पर्शी स्वरलहरी वाद्ययंत्र। इस लीला-माधुरी की बलिहारी है। विवाहिता हैं, तथापि सानन्द चिर-कुमारी! सचल चिन्मयी कन्याकुमारी। पास ही गदाधर हैं। उनकी गृहिणी हैं, घर में गृहस्थी की चीजें हैं, तथापि दोनों ब्रह्मचर्य के घनीभूत विग्रह हैं, निस्पृहा की ज्योति हैं। प्रभु ने नरत्राण हेतु स्वयं सशक्ति अवतार लिया है।

माँ के छोटे-से नौबतखाने में एक दिन कलकत्ते की एक महिला ने भाव में आविष्ट होकर लात मारकर पानी का घड़ा तोड़ डाला और अव्यवस्था पैदा कर दी। सर्वसहा माँ नाराज नहीं हुईं, बल्कि उल्टे प्रभु से बोलीं, "अहा, क्या मुझे भी उसके समान भाव नहीं होगा?" उन्होंने आश्वासन दिया। बोले, "ये शहरी लोग हैं। केवल शोरगुल मचाते हैं। बेशरम हैं। लज्जा चली गयी है।... तुम उन लोगों जैसी क्यों होओगी? तुम्हारा सब कुछ होगा, प्रतीक्षा करो। तुम लज्जाशील हो। बहुत ऊपर के दर्जे की हो। तुम्हारी तुलना में वे लोग काफी निचले दर्जे के हैं। तुम अन्त:सलिला फल्गु नदी के समान हो।"

राखाल महाराज ने निश्छल भाव से कहा, "सुधीर, हम लोग तुम्हें समाधि लगवा सकते हैं। लेकिन माँ हम लोगों से भी अधिक अच्छी तरह करा सकती हैं।" स्वामी विवेकानन्द ने गुरुभाइयों को लिखा था, "माँ क्या चीज हैं, यह बाद में समझोगे। माँ का अवलम्बन करके इस जगत् में एक बार फिर गार्गी, मैत्रेयी का उदय होगा।"

सुशील महाराज (स्वामी प्रकाशानन्द) ने अमेरिका से बेलूड़ आकर माँ की कृपा की बात कही थी, "रेखागणित का ट्यूशन करके राहखर्च की व्यवस्था की। फिर विष्णुपुर से जयरामबाटी तक का कीचड़ भरा रास्ता पार किया। लाल गुलाब की तरह सुन्दर ब्राह्मण-बालक को सहसा अपने मिट्टी

के घर के चबूतरे पर उपस्थित देखते ही माँ उच्च स्वर में बोल उठीं, "बेटा, तुम कलकत्ते के लड़के हो, इतना कष्ट करके आये हो ! मैं आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारा भवबन्धन कट जाय, तुम्हारा भवबन्धन कट जाय ! उस आशीर्वाद का बल ही तो मेरे जीवन का एकमात्र बल है । उसी से दिन कटे जा रहे हैं । माँ ही आश्रय हैं । परम आश्रय हैं ।"

चन्द्रमोहन दत्त माँ का बाजार करते थे । शरीर से दुर्बल होकर भी अथक कर्मी थे । माँ के शिष्य थे । उद्बोधन की निचली मंजिल में सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द) ने उन्हें सिखाया, "माँ के पास जाकर कहना – मुझे ब्रह्मज्ञान दीजिये ।" माँ ने प्रसाद देकर हँसते हुए कहा, "सिखायी हुई बात ! तुम मुझे देख रहे हो न, इसी से तुम्हारा सब हो जायेगा ।" इसके पीछे एक घटना है । इसके पहले एक दिन माँ से यह बात कहने के लिए सुधीर महाराज ने उन्हें भेजा था । उसी दिन माँ के पास जाकर चन्द्रमोहन घबड़ा गये । जबकि चन्द्रमोहन माँ के पास सदैव आते-जाते रहते थे । स्वच्छन्द रूप से बात भी करते थे । माँ उस समय पूजा कर रही थीं । चन्द्रमोहन की ओर देखकर माँ ने इशारे से पूछा, "क्या है?" चन्द्रमोहन ने घबड़ाकर किसी प्रकार कहा, "प्रसाद ।" माँ ने इशारे से दिखा दिया, "वहाँ रखा है, ले जाओ ।" फिर अगले दिन सुधीर महाराज के चन्द्रमोहन को सिखा-पढ़ाकर भेजने पर माँ ने वैसा कहा ।

१९०६ ई. । शरत् महाराज एक युवक से कह रहे हैं, "आज तुमने माँ को गुरु रूप में पा लिया । उनके कथनानुसार साधना करने पर उन्हें जगदम्बा के रूप में पाओगे, उपलब्धि करोगे, परन्तु परिश्रम करना होगा । जो लोग कहते हैं, 'माँ को देखा है, माँ की कृपा पायी है, अब हम लोगों की साधना क्या?' उनकी बात तो ठीक है, पर जो लोग वैसा कहते हैं, वे असल में स्वयं को धोखा दे रहे हैं । यह सब बहानेबाजी की बात है । माँ ने सिद्धि के द्वार खोल दिये हैं । तुम्हें उसी द्वार पर जाना होगा । सिद्धि-द्वार तक पहुँचना होगा !"

१९१२-१९१३ ई. की बात है । विज्ञान महाराज ने कहा था, "शरत् महाराज के बैठकखाने में बैठा था । ऊपर से माँ को प्रणाम करने के लिए बुलावा आया । एक-एक सीढ़ी पर पाँव रखकर चढ़ने लगा । इसके साथ ही हृदय में एक-एक कमल-दल खिलने लगा । परमानन्द से समस्त मन प्राण भर उठा ।" इस दिव्य अनुभव के समय निश्चय ही उन्हें संघनेता की बात याद रही होगी । १८९८ ई. में बलराम मन्दिर में स्वामीजी ने उन्हें मीठी झिड़की लगायी थी । कहा था, "यह कैसा प्रणाम पेशन? माँ को क्या इस प्रकार प्रणाम करते हैं? माँ को साष्टांग प्रणाम करो ।"

फिर इसी वर्ष सुधीर (स्वामी शुद्धानन्द) को मंत्र-दीक्षा देकर माँ के बागबाजार के भाड़े के मकान में ले जाकर माँ के श्रीचरणों में डालकर बोले थे, "माँ, इस लड़के को अच्छी तरह आशीर्वाद दीजिए !" माँ का दर्शन करने जाते समय स्वामीजी की एक रीति दीख पड़ती थी । वे बार-बार अपने सिर पर गंगाजल छिड़कते । शरत् महाराज का – गंगास्नान के बाद नित्य प्रात: प्रणाम करने जाते समय कैसा तटस्थ भाव और कैसी असीम श्रद्धा देखने को मिलती !

स्वामीजी सच्चे नायक थे । उन्होंने ही सबसे पहले माँ के स्वरूप, माँ की महिमा को समझा था । देखा था – माँ स्वयं आद्याशक्ति हैं । माँ यदि दया करके ब्रह्मज्ञान दें, तभी जीव को ब्रह्मज्ञान होता है । स्वामीजी, योगेन महाराज, शरत् महाराज, बाबूराम महाराज आदि विज्ञजनों ने माँ के विषय में जो भी कहना था, कहा है । साथ ही 'देखा है' – यह बात भी सदा सर्वप्रथम याद रखनी होगी । माँ – स्वामीजी आदि का प्रणाम स्वीकार करते समय आत्मस्थ – आत्माधिरूढ़ हो जाती थीं । देखने में आता कि इन प्रमुख मातृभक्तों के चले जाने के बाद ही माँ प्रकृतिस्थ होतीं या सहज अवस्था में आती हैं । उनके मन को सामान्य भूमि पर उतरने में काफी समय लगता । मुख्य बात याद आ रही है । श्रीरामकृष्ण ने नौबतखाने की ओर देखते हुए मास्टर महाशय से कहा था, "रामलाल की चाची वहाँ रहती हैं । उसी को सामने रखकर जीव-उद्धार का कार्य चल रहा है ।" "भगवान शिव ने काली को जैसा समझा है, भला दूसरा कौन वैसा जान सकता है !"

१९१८ ई. । बलराम मन्दिर में डॉक्टर दुर्गापद घोष से माँ की कृपा की बात कहते-कहते स्वामी तुरीयानन्द का चेहरा लाल हो उठा । भाव में विह्वल होकर वे बोल उठे, "डॉक्टर, देख क्या रहे हो? क्या माँ को समझ सके हो? यदि हृदय उनकी चर्चा न करे, तो केवल कान में मंत्र लेने से क्या होगा? अन्त में मुक्ति निश्चित है, पंजीकरण हो चुका है । लेकिन यदि मेहनत करो, मंत्र की साधना करो, तो जीवन्मुक्ति का आस्वादन करके धन्य हो जाओगे । तभी माँ को समझ सकोगे, उन्हें समझकर जगत् से परे जा सकोगे ।"

५६ वर्ष कैसे बीत गये । लगता है मानो कल की ही बात हो । २१ जुलाई १९२० ई. के सुबह १० बजे की बात है । उद्बोधन में कल महानिशा में माँ ने लीला-संवरण कर लिया है, शरत् महाराज की भाषा में 'कैलास-यात्रा' की है । पूरे भारत से आये माँ के भक्तों की भीड़ से उनका छोटा-सा कमरा भर गया है । पूजागृह में माँ की देह अजस्त्र फूलों से सजायी गयी है । श्रीचरणों में आलता, माँग में सिन्दूर लगा हुआ है । सब पंक्तिबद्ध होकर बारी-बारी से अन्तिम प्रणाम निवेदित कर रहे हैं । चरणों के पास माँ की जया, उनकी सखी – योगीन-माँ की अन्तिम पूजा के रूप में उनके दोनों नेत्रों की अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है । फर्श पर मैंने

(शेष अगले पृष्ठ पर नीचे)

सेठजी और चार बहुएँ

पूरनचन्द श्यामसुखा

यह बहुत दिनों पुरानी – एक बड़ी प्राचीन कथा है।

मगध (बिहार) के राजगृह नगर में 'धन्य' नामक एक बुद्धिमान तथा समृद्धिशाली वणिक् (सेठ) निवास करते थे। उनकी पत्नी का नाम था भद्रा। उनके धनपाल, धनदेव, धनगोप तथा धनरक्षित नाम के चार पुत्र और उज्झिका, भोगवती, रक्षिका तथा रोहिणी नाम की चार बहुएँ थीं।

एक बार धन्य-सेठ के मन में आया कि मेरे घर के सारे कार्य मेरे आदेश तथा निर्देश के अनुसार ही हुआ करते हैं, परन्तु यदि कभी मैं घर से अनुपस्थित रहूँ या व्यापार के सिलसिले में कहीं अन्यत्र जाऊँ या बीमार पड़ जाऊँ या मेरी मृत्यु हो जाय, तब घर का सारा कार्य किसके निर्देशानुसार चलना चाहिये – इसके लिये एक व्यवस्था ठीक कर देना उचित होगा। यह सोचकर एक बार उन्होंने अपने स्वयं के तथा अपनी बहुओं के समस्त सगे-सम्बन्धियों को निमंत्रण देकर बुलवाया और तरह-तरह के व्यंजन आदि भोज्य पदार्थ बनवाकर सबको तृप्तिपूर्वक खिलाया। भोजन के उपरान्त सबके बैठ जाने पर धन्य सेठ ने एक-एक करके अपनी सभी बहुओं को बुलाकर सबके समक्ष उनमें से प्रत्येक को धान के पाँच-पाँच दाने देते हुए कहा, "तुम लोग इस अनाज को खूब यत्नपूर्वक रखना और मेरे माँगने पर इन्हें लौटा देना।"

सबसे बड़ी बहू उज्झिका ने पाँच दानों को हाथ में लेकर सोचा – "मेरे मायके में धान के बहुत-से गोदाम भरे हुए हैं; ससुरजी जब भी माँगेंगे, तब वहाँ से पाँच दाने मँगवाकर दे दूँगी।" इतना सोचने के बाद उसने सेठजी द्वारा प्राप्त दानों को छिपाकर, गोपनीयता के साथ कूड़े में फेंक दिया।

दूसरी बहू भोगवती ने सोचा – "ससुरजी के गोदामों में तो धानों का अम्बार लगा हुआ है। जब वे माँगेंगे, तो वहाँ से लाकर पाँच दाने दे दूँगी, परन्तु उनके द्वारा दिये हुए धान के दानों को फेंकना उचित नहीं होगा।" यह सोचकर वह अपने कमरे में गयी और धान से छिलका उतारने के बाद उनसे निकले चावल के दानों को खा गयी।

तीसरी बहू रक्षिका ने विचार किया, "जब ससुरजी ने इन्हें यत्नपूर्वक रखने को कहा है, तो इन्हें सुरक्षित रखना ही उचित है।" ऐसा सोचकर उसने धान के उन दानों को एक स्वच्छ वस्त्र-खण्ड में बाँधकर उसे अपने आभूषणों की पिटारी में बन्द करके रख दिया। वह प्रतिदिन पेटी खोलकर देख लेती कि ससुरजी की अमानत सुरक्षित है या नहीं।

चौथी बहू रोहिणी ने विचार किया – "ससुरजी बड़े ज्ञानी और बुद्धिमान व्यक्ति हैं। धान के ये दाने उन्होंने अवश्य ही हम लोगों की परीक्षा के लिये दिये होंगे। नहीं तो घर में इतना धान होते हुए भी हम लोगों को पाँच-पाँच दाने देने का कोई मतलब नहीं है।" ऐसा सोचकर उसने अपने मायके से एक कर्मचारी को बुलवाकर उसे धान के वे पाँच दाने देते हुए आदेश दिया कि वह उन्हें सँभालकर रखे और अगली बरसात में उसे बोने तथा रोपने के बाद जब धान पक जाय, तो उसे कटवाकर जो भी फसल हो, उसे प्रतिवर्ष पुन: बोता रहे और अगले आदेश की प्रतीक्षा करे।

धान के उन पाँच दानों को बोकर उससे जितनी भी उपज हुई, कर्मचारी ने उसे मिट्टी के एक नये घड़े में रखकर उसका मुख भलीभाँति बन्द करके रख दिया। अगली वर्षा के समय उसने पुन: धान के उन दानों को बोकर जो फसल हुई उसे पहले के ही समान कई घड़ों में सुरक्षित रखा और तीसरी वर्षा के समय उन सबको बोने से धान की बहुत बड़ी फसल प्राप्त हुई। इसी प्रकार वह हर साल सारे धान को बोकर उससे अनेक-गुना फसल उत्पन्न करने लगा। धान के उन पाँच दानों से क्रमश: धान का एक बड़ा गोदाम भर गया।

पाँच साल पूरा हो जाने के बाद सेठजी ने एक बार फिर अपने स्वयं के तथा अपनी बहुओं के सारे सगे-सम्बन्धियों को निमंत्रण देकर बुलवाया और तरह-तरह के व्यंजन बनवा कर सबको तृप्तिपूर्वक खिलाया। भोजनोपरान्त उन्होंने एक-एक करके अपनी बहुओं को सबके समक्ष बुलवाया।

(शेष अगले पृष्ठ पर नीचे)

पिछले पृष्ठ का शेषांश

लेटकर माँ की देह को साष्टांग प्रणाम किया। योगीन-माँ ने मेरा सिर थोड़ी देर तक माँ के श्रीचरणों में लगाये रखा। बालक भला माँ को कितना समझ सकेगा?

माँ के देहावसान के अगले दिन गम्भीर सारदानन्द महाराज ने सहकारी को प्रत्येक केन्द्र में सूचित करने के लिये जो दो पंक्तियों का समाचार दिया, वह अभी तक स्पष्ट रूप से याद है, "परसों की महानिशा में रात एक बजे परमाराध्या श्रीमाँ ने कैलास यात्रा की है। तेरहवें दिन ठाकुर और उनकी विशेष पूजा करना।" एक भी अतिरिक्त शब्द नहीं !

❑ ❑ ❑ ❑ ❑ ❑ ❑ ❖ **(क्रमश:)** ❖ ❑ ❑ ❑ ❑ ❑ ❑ ❑

स्वामी प्रेमानन्द के संग में (१४)

(बाबूराम महाराज के नाम से सुपरिचित स्वामी प्रेमानन्दजी श्रीरामकृष्ण देव के एक प्रमुख शिष्य थे। वे बेलूड़ मठ के सर्वप्रथम व्यवस्थापक थे। मठ के मन्दिर में वे पूजा भी किया करते थे। स्वामी ओंकारेश्वरानन्द ने बँगला भाषा में हुए उनके अनेक वार्तालापों को लिपिबद्ध कर लिया तथा ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित कराया था। वहीं से इनका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

कलमा में स्वामी प्रेमानन्द

आज २० मई, १९१३, मंगलवार, वैशाखी पूर्णिमा का दिन है। बाबूराम महाराज बिदगाँ से ४-५ मील दूर कलमा आये हैं। वे वहाँ के जमींदार भूपति बाबू के परिवार द्वारा स्थापित 'उच्च अंग्रेजी विद्यालय' का परिदर्शन तथा कलमा में 'श्रीरामकृष्ण सेवा समिति' की स्थापना करेंगे।

महाराज भक्तों के साथ विद्यालय आये हैं। विद्यालय के प्रवेशपथ को सुसज्जित करके तोरण बनाया गया है और उसके ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में 'स्वागतम्' लिखा हुआ है। शिक्षकों ने आकर उनका सादर स्वागत किया। विद्यालय के बृहत् प्रांगण में श्रीरामकृष्ण का एक विशाल चित्र सुन्दर ढंग से सुसज्जित किया हुआ देखकर महाराज ने परम आनन्द व्यक्त किया। विद्यालय में कोई मौलवी हैं या नहीं – पूछने पर मौलवी साहब ने महाराज के सम्मुख आकर 'आदाब' किया, महाराज ने भी 'आदाब' में ही प्रत्युत्तर दिया।

इसके बाद मौलवी साहब के पीठ पर हाथ फेरते हुए महाराज कहने लगे, "मौलवी साहब! देखिएगा कि कहीं हिन्दू-मुसलमानों में विरोध न हो। हिन्दू-मुसलमान एक ही भगवान की सन्तान हैं। हमारे ठाकुर श्रीरामकृष्ण सभी के लिए आये थे। वे केवल हिन्दुओं के अवतार नहीं हैं, मुसलमानों के भी पीर हैं। कभी मैं मुसलमानों को देख तक नहीं सकता था, परन्तु बाद में ठाकुर मेरे द्वारा ही मुसलमान भक्तों का आसन लगवा दिया करते थे। देखिए किस प्रकार उन्होंने मेरी कट्टरता दूर कर दी है!"

इसके बाद महाराज ने छात्रों के निमित्त कुछ उत्साहजनक बातें कहीं – "तुम लोग जिस देश में जन्मे हो, वह देश महा पुण्यभूमि है। यह देश कितने ही महापुरुषों का जन्मस्थान है, भारत की सन्तानों में कितने बड़े-बड़े मनीषी हुए हैं। राममोहन राय को ही देखो न, कितने बड़े मनीषी थे! फिर तुम लोग विश्वविश्रुत स्वामी विवेकानन्द की बातों को क्यों नहीं लेते!

पिछले पृष्ठ का शेषांश

सर्वप्रथम बड़ी बहू उज्झिका आयी। सेठजी ने उसे अपना दिया हुआ धान वापस लाने को कहा। उसने अपने घर में रखे हुए धान में से पाँच दाने मँगवाकर दे दिये। सेठजी ने जब पूछा कि क्या ये उन्हीं के द्वारा दिये हुए दाने हैं, तो उसने बताया कि ये तो उसने अपने घर के भण्डार से मँगाकर दिये हैं और उनके दिये हुए दाने तो उसने फेंक दिये थे।

दूसरी बहू भोगवती ने घर में ही रखे हुए धान में से पाँच दाने ला दिये और बोली – आपके दिये हुए दानों को तो मैंने खा लिया था। तीसरी बहू रक्षिका ने अपने गहनों की पेटी लाकर उसमें संरक्षित दानों को निकालकर वापस कर दिया। अन्त में सबसे छोटी रोहिणी आयी। उसने बताया कि धान के उन पाँच दानों से इतना धान हुआ है कि उसे लाने के लिये कई बैलगाड़ियों की जरूरत होगी। स्पष्ट रूप से सब कुछ बताने को कहे जाने पर वह बोली कि कैसे धान के उन कुछ दानों से उसने इतना अधिक धान पैदा कर लिया है।

रोहिणी की बात सुनकर सेठजी अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और सबके सामने ही उसे घर के समस्त कार्यों की अधिकारिणी नियुक्त कर दिया। अब से घर का सारा कार्य उसी के आदेश तथा निर्देश के अनुसार चलने लगा। रक्षिका घर के सम्पूर्ण धन-सम्पत्ति की रक्षिका हो गयी, भोगवती भोजनालय की व्यवस्थापिका बन गयी और उज्झिका को पूरे घर की स्वच्छता का उत्तरदायित्व सौंप दिया गया।

यह कथा सुनाने के बाद गुरु ने शिष्य को उपदेश देते हुए कहा – हे वत्स, जो साधक अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अचौर्य तथा असंग्रह नामक पाँच व्रतों को ग्रहण करके उनका उज्झिका के समान परित्याग कर देता है, वह इहलोक में कुख्याति तथा परलोक में अधोगति को प्राप्त होता है। जो साधक भोगवती के समान इन महाव्रतों को धारण करके इनका जीविका-निर्वाह के साधन के रूप में केवल बाह्य रूप से पालन करता है और भोजन आदि में आसक्त रहता है, वह परलोक में दु:ख को प्राप्त होता है। जो साधक रक्षिका के समान धारण किये हुए व्रतों को यत्नपूर्वक पालन करता है, वह इहलोक में सुख्याति तथा परलोक में उत्तम गति प्राप्त करता है; और जो साधक रोहिणी के समान इन व्रतों का आजीवन अधिकाधिक विकास करता है, वह इस लोक में शान्ति, कीर्ति तथा आनन्द पाते हुए आयु का क्षय हो जाने के बाद मुक्ति नामक परम गति को प्राप्त होता है। ❑❑❑

(उद्बोधन, वर्ष ५६, अंक ६)

भारत का वर्तमान जगत् से परिचय किसने कराया? उनके पूर्व कितने लोग भारत को पहचानते थे? वर्तमान युग में तथाकथित सुसभ्य देश भारतवासियों को कीड़े-मकोड़ों की भाँति अवज्ञा की दृष्टि से देखते थे। स्वामी विवेकानन्द को देखकर ही पूरे विश्व की आँखें खुल गयी हैं। दुनिया ने देखा कि भारत में इतने बड़े सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न महापुरुष भी जन्म लेते हैं! उन्हीं के प्रभाव से आज सर्वत्र भारत-भारती का आदर हो रहा है। तुम भी उन्हीं का अनुसरण करो।''

वहाँ से महाराज 'सेवा-समिति' के भवन में गये। यथासमय समिति के उद्घाटन का कार्य सम्पन्न हो जाने के बाद वे सबको आशीर्वाद देते हुए बोले – ''देखना, यहाँ कितने साधु-भक्त आयेंगे! ठाकुर आये हैं और उन्हीं के आकर्षण से हम लोग भी आये हैं, नहीं तो इस छोटे-से गाँव में क्या हमारा आना हो पाता?''

संध्या के समय महिलाएँ महाराज के मुख से कुछ सुनने को उत्सुक थीं। घर के भीतर मन्दिर के बगल में स्थित आंगन में समवेत महिलाओं के प्रति उन्होंने कहा – ''माताओ, आप भेद मत कीजिएगा। उधर माँ काली हैं और यहाँ ठाकुर हैं – दोनों एक हैं। जो काली हैं, वे ही ठाकुर हैं। जो ठाकुर हैं, वे ही काली हैं। जो काली हैं, वे ही कृष्ण हैं। आप तो जानती हैं कि (श्रीराधा के पति) अयान घोष काली की ही उपासना किया करते थे। एक दिन श्रीराधा कृष्ण के पास गयी थीं। उसी समय अयान घोष कुटिला की बात सुनकर देखने गये। परन्तु उन्होंने कृष्ण के स्थान पर काली को देखा और उन्हीं की पूजा की। कृष्ण और काली एक हैं। भेदबुद्धि से अनिष्ट होता है, अकल्याण होता है।''

''श्रीमाँ को भला किसने समझा है, कौन समझ सकता है! तुम लोगों ने सीता, सावित्री, विष्णुप्रिया, श्रीमती राधारानी की बातें सुनी हैं। माँ इन सबकी अपेक्षा कितनी ऊँचाई पर आसीन हैं। उनमें ऐश्वर्य का लेश तक नहीं है। ठाकुर में तो बल्कि विद्या का ऐश्वर्य था – उनकी भावसमाधि आदि इसी जन्म में हमने देखा है – बहुत देखा है। परन्तु माँ में विद्या तक का ऐश्वर्य नहीं था। यह क्या महाशक्ति है! जय माँ! जय माँ!! जय शक्तिमयी माँ! देखते नहीं कितने लोग दौड़े चले आ रहे हैं – जो विष हम स्वयं हजम नहीं कर पाते – सब माँ के पास भेज देते हैं और माँ सबको गोद में उठा ले रही हैं – अनन्त शक्ति! अपार करुणा, जय माँ!''

नियम-पालन ही धर्म का क-ख-ग है

पूजनीय महापुरुष महाराज, बाबूराम महाराज, गंगाधर महाराज, कृष्णलाल महाराज और ब्रह्मचैतन्य मठ के पश्चिमी बरामदे में बैठे हुए हैं। रात के करीब साढ़े दस बजे होंगे।

आज प्रात:काल ब्रह्मचारी छक्कू, ब्र. प्रियनाथ (आत्मप्रकाशानन्द), ब्र. गोपाल (गोपालानन्द), ब्र. सनत् (प्रबोधानन्द) भाड़े की नाव में गंगा के पूर्वी किनारे पर स्थित नारायण बाबू के घर से पूजनीय महाराज के लिए पेयजल का घड़ा लाने गये थे। मठ में उन दिनों नलकूप का पानी नहीं था। महाराज का पेट खराब है; उन्हें गंगा का पानी सहन नहीं होता। नाव ब्रह्मचारी सनत् द्वारा लायी गयी थी। कोई-कोई मठ के संचालकों की अनुमति लिए बिना ही नाव में उस पार गये थे। इसी विषय में पूजनीय महापुरुष महाराज कह रहे हैं –

''हमारे रहते ही देख रहा हूँ कि जिसकी जो इच्छा, कर रहा है। संचालकों से कहकर कुछ नहीं करता। यह सब ठीक नहीं है। इस प्रकार अनुशासन भंग करने से अच्छा नहीं होगा। नियमों का पालन ही धर्म का क-ख-ग है। इससे होकर गये बिना ये लोग कैसे आध्यात्मिक उन्नति करेंगे!

यथेच्छाचार और स्वाधीनता एक नहीं है

''मठ क्या शोरगुल की जगह है? सिर मुड़ाकर गेरुआ लिया है, तो जा भिक्षा माँगकर खा। हजारों साधु हैं, उन्हीं के दल में सम्मिलित हो जा। पर यहाँ रहना है, तो ठाकुर के आदर्श के अनुसार कार्य करना और जीवन गढ़ना होगा। हमें त्याग, विवेक, वैराग्य, प्रेम, भक्ति, विश्वास और निष्काम कर्म की जरूरत है। स्वामीजी ने यह मठ आलसी-मूर्खों का दल बढ़ाने के लिए नहीं बनाया है। हमारे लिए तो अब कुछ देखना बाकी नहीं रहा। सारा भारतवर्ष घूमकर, बहुत-कुछ देखकर हमारा जी भर गया है। लड़कों में अनुशासन और मर्यादा की जरूरत है।... इसके माध्यम से ही वे स्वाधीनता का सच्चा अर्थ समझ सकेंगे। नहीं तो, यथेच्छाचार करने से तो आलसियों के दल में ही वृद्धि होगी।

''स्वामीजी ठाकुर के शिष्य थे और हम लोग भी वही हैं। हम लोग कैसे उनकी बातें मानकर चलते रहे हैं! क्यों? मानने की क्या जरूरत थी? हम लोग भी तो स्वाधीनतापूर्वक चल सकते थे। परन्तु हमने ऐसा क्यों नहीं किया? इसलिए कि स्वामीजी ठाकुर के प्रतिनिधि हैं, उन्हें ठाकुर के समान ही मानना होगा, उन्हें न मानने से ठाकुर की ही उपेक्षा होती है।

''स्वामीजी हर रोज रात को चार बजे घण्टा लगाकर मठ के साधु-ब्रह्मचारियों को उठाकर ध्यान किया करते थे। किसी के उठने में थोड़ा विलम्ब होने पर उस दिन उसे मठ से भिक्षा नहीं दी जाती थी। एक दिन मेरा और सारदा (स्वामी त्रिगुणातीत) के उठने में देरी हो जाने पर स्वामीजी ने हम लोगों से कहा, 'आज तुम लोगों को मठ से भिक्षा नहीं मिलेगी। गाँव में जाकर माधुकरी करके खाना होगा।' सचमुच ही उन्होंने हम दोनों से ऐसा ही कराया। हमारे माधुकरी करके लाते ही स्वामीजी ने आनन्दपूर्वक उसे खोलकर थोड़ा थोड़ा अपने मुख में डालने लगे। हम लोग उनकी बातों को

ठाकुर का ही आदेश समझकर चला करते थे।

"स्वामीजी के पास यदि कोई शिष्य होने आता, तो वे उसे कहते, 'तुझसे जो कहूँगा, कर सकेगा? यदि बाघ के मुख में जाने को कहूँ, अपने प्राणों की परवाह किये बिना विचार किये जा सकेगा? गंगा में कूद जाने को कहूँ, तो कूद सकेगा?' ऐसा ही आज्ञाकारी होना चाहिए। इसी प्रकार की आज्ञाकारिता तथा अनुशासन से होकर आगे बढ़ने पर ही समझ सकोगे कि स्वाधीनता क्या है और उसके लिये योग्य भी हो जाओगे। फिर आजीवन एक ही प्रकार के नियमानुसार चलने पर मन का विकास नहीं होता। भेड़िया-धसान के समान मन जड़ होता जाता है। वह भी अच्छा नहीं। अत: जैसे वे इस प्रकार अनुशासन का उपदेश देते, वैसे ही अपने साथ खूब मिलने-जुलने और विभिन्न प्रकार के प्रश्न तथा तर्क-वितर्क करने को भी प्रोत्साहित करते थे।

(एक व्यक्ति के प्रति) "इस मठ में निवास करना क्या कम सौभाग्य की बात है! तुम लोगों को यह मठ साधारण-सा लग सकता है। (पर) सारे जगत् की आँखें इस मठ की ओर लगी हुई हैं। मैं बिल्कुल सच कह रहा हूँ। सारी दुनिया घूम आओ, तो देख सकोगे। जगत् के शीर्ष-स्थानीय होकर भी क्या तुम्हें यथेच्छाचार या मनमौजीपना शोभा देगा?"

गंगाधर महाराज – "मैं दो-तीन वर्ष बाद बहरमपुर से तीन-चार दिनों के लिए मठ में आया था। उन दिनों मठ नीलाम्बर मुखर्जी के उद्यान में था। एक दिन स्वामीजी रात को दो बजे तक सबके साथ शास्त्रचर्चा आदि करने के बाद विश्राम करने गये। उसके बाद शरत् महाराज आदि हम लोग भी सोने गये। रात को करीब चार बजे उठकर मैंने देखा कि स्वामीजी हाथ-मुख धोकर टहल रहे हैं। मुझे देखकर उन्होंने कहा, 'गंगा, तू जोर से घण्टा बजाकर सबको उठा। सभी उठकर ध्यान आदि करें।' उसी बरामदे में शरत् महाराज, हरि महाराज, तारक दा आदि रात को दो बजे के बाद सोये थे, अभी-अभी नींद लगी थी – कच्ची नींद। उसी समय स्वामीजी ने मुझे जोर से घण्टा बजाकर सबको उठा देने के लिए कहा। जरा सोचकर दो देखिए। मैंने कहा, अभी जगा देंगे!' इस पर स्वामीजी ने ऐसा उत्तर दिया कि मैं उनका प्रतिवाद नहीं कर सका। मैं इस किनारे से उस किनारे तक जोर से घण्टा बजाने लगा। शरत् महाराज, हरि महाराज, तारक दा आदि तो नाराज होकर कहने लगे – 'अरे, कौन घण्टा बजा रहा है? हमें मारना चाहता है क्या!' (पर) मेरे पीछे स्वामीजी को देखकर बिना कुछ कहे सभी जप-ध्यान करने बैठ गये। स्वामीजी बोले, 'तुम लोगों के जप-ध्यान में न बैठने पर नये लड़के किससे सीखेंगे?' "

"एक अन्य दिन मैंने देखा कि स्वामीजी समस्त साधु-ब्रह्मचारियों को लेकर ध्यान करने जा रहे थे। सारदा (स्वामी त्रिगुणातीत) महाराज से बोले – 'चल, ध्यान करने चल।' उस समय सारदा महाराज को बुखार था। स्वामीजी बोले – 'ध्यान करने से बुखार-उखार सब भाग जाएगा; आकर ध्यान कर।' मैंने सोचा कि स्वामीजी शायद सारदा महाराज के साथ विनोद कर रहे हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं थी। अरे बाबा! मैंने देखा कि सचमुच ही वे उन्हें खींचकर मन्दिर में ले गये और दो-तीन घण्टे लगातार बैठाकर ध्यान कराया।"

सुनने में आता है कि इस ध्यान के बाद पूजनीय स्वामी त्रिगुणातीत का बुखार चला गया था।

गंगाधर महाराज – (महापुरुष महाराज के प्रति) "एक तरह का सम्प्रदाय है, जिसे अमुक सम्प्रदाय कहते हैं। वे लोग सफेद कपड़े पहनते हैं। उनके मन में जब जो भी विचार आता है, उस समय वैसा ही करते हैं।"

महापुरुष महाराज – हाँ, उन्हें देखा है, मूर्खों का दल है। ऐसे दल की हमें जरूरत नहीं। हमें मनुष्य चाहिए। ये लोग सब ठाकुर के आश्रय में आये हैं। नि:सन्देह ये लोग अच्छे हैं, अन्यथा नहीं आते। टिक भी नहीं पाते। सभी के घर में खाने की कुछ-न-कुछ व्यवस्था है, वह सब छोड़कर भी जब ये लोग ठाकुर के आश्रय में आये हैं, तो अवश्य ही इनमें कुछ आध्यात्मिकता है। परन्तु हम उसको और भी अच्छा करना चाहते हैं। (ब्रह्मचारियों की ओर उन्मुख होकर) तुम सभी अच्छे हो, परन्तु और भी अच्छा बनना होगा। भोजन के अभाव में बननेवाले साधु हमें नहीं चाहिए, ऐसे चेले तो विशेषत: आजकर बंगाल में लाखों मिलते हैं।

(बाबूराम महाराज के प्रति) "इनमें बहुत अच्छे-अच्छे लड़के भी हैं। लड़कों के भले के लिए ही शिक्षक उन्हें डाँटता-मारता है, वैसे ही हमें भी तुम लोगों के कल्याण के लिए वही करना पड़ता है। हम लोगों के मन में क्या तुम लोगों के प्रति कोई क्रोध है, जो तुम्हें डाँटते हैं? अच्छे बनने आये हो; तुम्हारी त्रुटियाँ दूर करने के लिए ही हम लोग बोलते हैं। राखाल महाराज का तो बचपन से ही बाल-स्वभाव है। बालक के समान ही जीवन बिता रहे हैं।"

गंगाधर महाराज – "महाभारत में है कि माँ-बाप यदि सन्तान को मारते हैं, तो मारते समय उनकी अँगुलियों के पोर से अमृत बरसता है। देखो तो कितनी बड़ी बात है!"

बाबूराम महाराज – "मैं तो अब भी कहीं जाना हो, तो महाराज, शरत् महाराज, या फिर माताजी को – किसी को बोलकर जाता हूँ, अभ्यास हो गया है न! ❖ **(क्रमश:)** ❖

'रामनाम-संकीर्तन' का इतिहास (४)

स्वामी विदेहात्मानन्द

'रामनाम-संकीर्तन' के रचयिता

काफी काल से लोगों के मन में यह जानने की उत्सुकता बनी हुई है कि आखिर इस सुमधुर 'रामनाम-संकीर्तन' या 'नाम-रामायणम्' की रचना किसने और कब की थी। कई लोगों ने इसके लिये शोध भी किये, परन्तु किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके। अनेक वर्षों तक इस विषय में कोई भी प्रामाणिक जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी थी।

नागपुर के मराठी दैनिक 'लोकमत' (दिनांक २६ नवम्बर, १९८६ के अंक) में श्री वा. ल. मंजुल द्वारा लिखित एक लेख प्रकाशित हुआ – 'जूने हस्तलिखितातून नवे संशोधन' (पुरानी पाण्डुलिपियों में नया शोध)। लेखक पूना के भण्डारकर प्राच्यविद्या शोध संस्थान में एक अधिकारी थे। उक्त प्रबन्ध में उन्होंने लिखा है, "संस्थान को कराड़ के कीर्तनकार श्री द. रा. जोशी द्वारा संग्रहित पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं, जिसमें एक पाण्डुलिपि १९ वीं शताब्दी में प्रसिद्ध कराड़ के सनातनी संस्कृत विद्वान्, रामभक्त-पदकार तथा बिनी के कीर्तनकार विठोबा अण्णा दफ्तरदार के 'नाम-रामायणम्' नामक संस्कृत काव्य के रूप में प्रकाशित है। इसमें श्रीराम के एक-एक विशेषण के द्वारा रामचरित की एक-एक घटना को प्रस्तुत करते हुए बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक सम्पूर्ण रामायण को रामनाम के साथ गूँथ दिया गया है। इस कारण इसका 'नाम-रामायणम्' नाम सार्थक है। उपरोक्त संग्रह में 'नाम-रामायणम्' की जो प्रति है, वह विठोबा अण्णा के सुपुत्र रघुवीर के हाथ से शक संवत् १७८७ (१८६५ ई.) में नकल की हुई है। इस नाम-रामायण का ऐसा भाग्य है कि ५०-६० वर्ष पूर्व रामकृष्ण संघ के एक सन्त को दक्षिण भारत की यात्रा करते समय यह काव्य सुनने को मिला और वे इससे बड़े प्रभावित हुए। न केवल भारत, अपितु दुनिया भर के रामकृष्ण संघ के केन्द्रों में इसे नित्य-नैमित्तिक उपासना के रूप में गाया जाता है। प्रार्थना में इसका उपयोग करनेवालों के लिये इसके रचनाकार भले ही अज्ञात रहे हों, परन्तु ऐसा कहना अतिशयोक्ति न होगी कि यह काव्यमय रामकथा विश्व-ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त हो चुकी है।"

यह समाचार पढ़ने के बाद से ही वर्तमान लेखक ने इस विषय में शोध करना आरम्भ किया। पूना रामकृष्ण मठ के स्वामी रामेश्वरानन्द जी से इस कार्य में विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। उन्होंने बेलगाम से प्रकाशित विठोबा अण्णा कृत 'पद-संग्रह' तथा 'पदसमूह' ग्रन्थ के कुछ पृष्ठों की प्रतिलिपि हमें उपलब्ध करायी है, जिनमें विठोबा का संक्षिप्त चरित्र तथा नाम-रामायण का भी मुद्रित रूप उपलब्ध है। इसकी छायाप्रति प्राप्त करने में श्री प्रफुल्ल तुंगारे की भी सहायता प्राप्त हुई है। वहाँ से तथा अन्यत्र से भी विठोबा के जीवन के विषय में जो जानकारी मिल सकी है, वह संक्षेप में इस प्रकार है –

विठोबा अण्णा दफ्तरदार (१८१३-१८७३)

विठोबा अण्णा (विट्ठल पन्त) एक महाराष्ट्रीय कवि थे। इनका जन्म १८१३ ई. (शक १७३५) में कराड़ के शाण्डिल्य गोत्रीय बेदरे उपनाम के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। मूलत: उनका घराना बेदर का था, पर इनके पितामह पेशवा की सेवा में कराड़ विभाग के दफ्तरदार बने और यह घराना वहीं बस गया। तब से यह परिवार बेदरे की जगह दफ्तरदार उपनाम से सुपरिचित हुआ। ग्यारह वर्ष की आयु में उन्होंने अध्ययन शुरू किया और अल्प काल में ही बालबोध तथा मोड़ी लिपि में लिखना-पढ़ना सीख गये। अगले वर्ष उनका विवाह हुआ। तदुपरान्त वे अप्पा पुरोहित नामक विद्वान् के पास संस्कृत विद्या का अध्ययन करने लगे। बाद में वे स्वयं उनकी पाठशाला चलाने लगे। संस्कृत में पंच-महाकाव्यों का सूक्ष्म अध्ययन के साथ ही वे मराठी के श्रेष्ठ काव्यों का भी अध्ययन करते रहे। वे अपनी रसीली वाणी में पुराणों की कथा करते थे। अपने वक्तृत्व को संगीत से सजाकर, उन्होंने कीर्तन-कला में भी विशेष निपुणता हासिल की थी।

विठोबा बचपन से ही आशुकवि थे। उन्होंने संस्कृत में अनेक काव्यों की रचना की। भगवान राम के उपासक होने के कारण उनके काव्य में विविध प्रकार से रामभक्ति व्यक्त हुई है। संस्कृत में रचित उनके १०-१२ काव्य ग्रन्थों में प्रमुख हैं – गजेन्द्र-चम्पू, श्रीराम-विषयक सुश्लोक-लाघव, हेतु-रामायण, प्रबोधोत्सव-लाघव, साधु-पार्षद-लाघव। उनके मराठी काव्य पर भी संस्कृत का काफी प्रभाव है।

विठोबा जब करीब तीस वर्ष के थे, तभी उनके माता-पिता तथा पत्नी का देहान्त हो गया। उसके शीघ्र बाद ही वे भी पक्षाघात से पीड़ित हुए। वे स्वयं वैद्यकी जानते थे, अत: वे इस रोग से काफी कुछ उबर गये और बाकी जीवन उन्होंने श्रीराम की उपासना तथा ग्रन्थ-रचना में ही व्यतीत किया।

अपनी आयु के साठवें वर्ष (१८७३ ई.) में चैत्र वदी एकादशी के दिन श्रीराम का नाम लेते हुए इन्होंने देहत्याग किया। आज भी महाराष्ट्र के कीर्तनकार अपने कीर्तनों को प्रभावी बनाने हेतु विठोबा अण्णा के संस्कृत तथा मराठी काव्य का सहारा लिया करते हैं।[२३]

२३. भारतीय संस्कृति कोश (मराठी), संपादक पं. महादेव शास्त्री जोशी, पुणे, खण्ड ४, सं. १९९४, पृ. २८५-८६; संस्कृत वाङ्मय कोष, ग्रन्थकार खण्ड, श्री. भा. वर्णेकर, कोलकाता, पृ. ३३४

विठोबा अण्णा-कृत 'नाम-रामायणम्'

रामकृष्ण संघ में प्रचलित 'रामनाम-संकीर्तन' के साथ उपरोक्त ग्रन्थ में प्रकाशित विठोबा के 'नाम-रामायणम्' की तुलना करने पर हम देखते हैं कि दोनों के प्रारम्भिक भाग में काफी साम्य तथा परवर्ती अंश में काफी भेद है। मठ में प्रचलित संकीर्तन में केवल १०८ नाम हैं, परन्तु विठोबा अन्ना द्वारा रचित जो मुद्रित प्रति हमें प्राप्त हुई है, उसमें दो-दो नामों की एक-एक पंक्ति बनायी गयी है, अतः उसमें कुल २१६ नाम हैं।[२४] साथ ही उसमें 'उत्तरकाण्ड' नहीं है। उक्त ग्रन्थ में प्रकाशित 'नाम-रामायणम्' तथा उसका भावार्थ इस प्रकार है (लम्बे समासयुक्त पदों को बीच में योजक-चिह्न लगाकर सरलीकरण कर दिया गया है) –

विठोबा-अण्णा-कृत

श्रीमत्सीतारामाय नमः

विठलपंतकृत नाम-रामायण

(बतर्ज – रघुपति राघव राजाराम)

बालकाण्ड का अनुवाद पहले (नवम्बर २०११ अंक में) दिया जा चुका है। अतः मूलमात्र दिया जा रहा है –

।। अथ बालकाण्डम् ।।१।।

शुद्ध-ब्रह्म-परात्पर राम, कालात्मक-परमेश्वर राम
शेष-तल्प-सुख-निद्रित-राम, ब्रह्माद्यमर-प्रार्थित राम
चंड-किरण-कुल-मंडन राम, श्रीमद्दशरथ-नंदन राम
कौसल्या-सुख-वर्धन राम, विश्वामित्र-प्रिय-धन राम
घोर-ताटका-घातक राम, मारीचादि-निपातक राम
कौशिक-मख-संरक्षक राम, श्रीमदहल्योद्धारक राम
नाविक-धावित-मृदु-पद राम, *कृत-मिथिला-नगरास्पद राम
विदेह-मानस-रंजक राम, त्र्यम्बक-कार्मुक-भंजक राम
सीतार्पित-वरमालिक राम, कृत-वैवाहिक-कौतुक राम
*भार्गव-दर्प-विनाशी राम, *श्रीमदयोध्या-वासी राम
राम राम जय सीताराम, राम राम जय राजाराम

।। अथायोध्या-काण्डम् ।।२।।

सीता-मनो-विनोदक राम, नारद-कृत-संकेतक राम

– हे सीताजी का मनोरंजन करनेवाले राम !!
– हे नारद द्वारा संकेत किये जानेवाले राम !!

जाताभिषेक-संभ्रम राम, गुरूक्ति-रचितोपक्रम राम

– हे राम, आपके राज्याभिषेक के प्रस्ताव पर सर्वत्र उत्साह फैल गाया !! हे राम, गुरु वशिष्ठ के द्वारा उसकी तैयारी हुई !!

लक्ष्मण-सुख-संलापक राम, दासी-बुद्धि-प्रेरक राम

– हे राम, लक्ष्मण आपके साथ सुखपूर्वक इस विषय पर आपके साथ चर्चा की !! हे राम, आपने दासी मन्थरा की बुद्धि को इसमें बाधा डालने हेतु प्रेरित किया !!

कैकेय्यसोढ-वैभव राम, कृत-पितृ-सन्निधि-संद्रव राम

– हे राम, कैकेयी आपके वैभव की बात सह नहीं सकी !! हे राम, आप पिता का आदेश पाने के लिये उनके पास गये !!

कृत-गुर्वाज्ञा-पालन राम, कृत-कौसल्याऽश्वासन राम

– हे राम, आपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन किया !!
– हे राम, आपने माता कौशल्या को आश्वस्त किया !!

लक्ष्मण-विवेक-दर्शक राम, सीता-लक्ष्मण-हर्षक राम

– हे राम, आपने लक्ष्मण को विवेकपूर्ण मार्गदर्शन किया !!
– हे राम, आपने सीता और लक्ष्मण को (अपने साथ जाने की अनुमति देकर) हर्षित किया !!

घंटा-पथ-पद-चारक राम, वामदेव-जन-बोधक राम

– हे राम, आप नगर के मुख्य मार्ग पर गये !! और
– हे राम, आपने नाराज नगरवासियों को समझाया !!

कैकेयी-परि-पृच्छक राम, वल्कल-पट-परिधारक राम

– हे राम, आपने कैकेयीजी से उनकी इच्छा पूछी !! – हे राम, आपने (राजवस्त्र उतारकर) वल्कल वस्त्र धारण किया !!

अरण्य-गमन-प्रस्थित राम, रम्य-स्यंदन-संस्थित राम

– हे राम, आप वन जाने को प्रस्तुत हुए !!
– हे राम, आप सुन्दर रथ में आसीन हुए !!

अनुगत-पौरव-भासी राम, तमसा-तीर-निवासी राम

– हे राम, आपने अनुरागी नगरवासियों को भी रथ का अनुसरण करते देखा !! हे राम, आपने (रात में) तमसा नदी के तट पर निवास किया !!

रथ-पथ-पुरजन-वंचक राम, गंगाकूल-विहारक राम

– हे राम, आप नगरवासियों को (सोते) छोड़कर रथमार्ग में आगे निकल गये !! हे राम, आप गंगातट पर चलते रहे !!

श्रृंगवेरपुर-वासी राम, प्रियसख-गुह-संतोषी राम

– हे राम, आपने श्रृंगवेरपुर में रात्रिवास किया !! – हे राम, आपने अपने प्रिय सखा गुह को सन्तोष प्रदान किया !!

सुमंत्र-मंत्रि-निवर्तक राम, भागीरथ्ययुत्तारक राम

– हे राम, आपने (वहाँ से) मंत्री सुमंत्र को वापस भेज दिया !!
– हे राम, वहाँ से तुम गंगाजी के उस पार गये !!

प्रियसख-गुहक-निवर्तक राम, भरद्वाज-निर्वर्तक राम

– हे राम, तदुपरान्त आपने अपने प्रिय मित्र गुह को वापस लौटा दिया !! हे राम, वहाँ से आपने (प्रयाग पहुँचकर) भरद्वाज मुनि को परिपूर्णता प्रदान की !!

---

२४. विठोबा अण्णा कृत 'पदसंग्रह', संकलक – रघुनाथ रामकृष्ण भागवत, प्रकाशक – आबाजी सावन्त, बेलगाम, चतुर्थ संस्करण १९०५, पृ. २४-२८; तथा 'पदसमूह', पृ. ३५-३८ (उपलब्ध – भारतीय इतिहास संशोधन मंडल, पुणे); * पाठभेद

यमुना-सरिदुत्तारक राम, दशरथ-दुःखद-वियोगक राम

– हे राम, इसके बाद आपने (चित्रकूट जाने हेतु) यमुना नदी को पार किया !! – हे राम, (उधर) महाराज दशरथ का दुखद स्वर्गवास हो गया !!

भरत-स्वीकृत-पद्धति राम, विरचित-दशरथ-सद्गति राम

– हे राम, भरत ने विधि के विधान को स्वीकार किया !! हे राम, उन्होंने महाराज दशरथ की अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की !!

आगत-भरत-विबोधक राम, भरत-दत्त-निज-पादुक राम

– हे राम, आपने चित्रकूट में आये हुए भरत को समझाया !! – हे राम, आपने भरत को अपनी पादुका प्रदान की !!

कैकेयी-प्रियभाषी राम, अत्र्याश्रम-प्रवेशी राम

– हे राम, आपने माता कैकेयी से मधुर बातें कीं !! – हे राम, आपने अत्रि मुनि के आश्रम में प्रवेश किया !!

मुनि-विरचितानुशासन राम, अनुसूया-कृत-लालन राम

– हे राम, अत्रिमुनि ने आपको सुन्दर उपदेश दिये !! हे राम, अनुसूया ने (आप दोनों के प्रति) खूब वात्सल्य दिखाया !!

राम राम जय सीताराम, राम राम जय राजाराम

– हे राम, हे राम, हे सीताराम, आपकी जय हो !! हे राम, हे राम, हे राजाराम, आपकी जय हो !!

।। अथारण्य-काण्डम् ।।३।।

अत्रिच्छात्रोत्तारित राम, पुष्करिणी-तट-संगत राम

– हे राम, अत्रि मुनि के छात्रों ने आपको आगे का मार्ग दिखाय !! हे राम, आप सरोवर के किनारे जा पहुँचे !!

विराध-राक्षस-घातक राम, शरभंगामृत-दायक राम

– हे राम, आपने वहाँ विराध राक्षस का वध किया !! हे राम, आपने शरभंग मुनि को दर्शन देकर अमृतत्व प्रदान किया !!

मुनिजन-दर्शित कानन राम, सुतीक्ष्ण-मुनि-संतोषण राम

– हे राम, वहाँ मुनियों ने आपको वन दिखलाया (जहाँ राक्षसों द्वारा मारे गये ऋषियों की हड्डियाँ बिखरी पड़ी थीं) !! – हे राम, आपने सुतीक्ष्ण मुनि से मिलकर उन्हें सन्तोष प्रदान किया !!

अग्निजिह्व-सुखकारी राम, अगस्ति-विपिन-विहारी राम

– हे राम, आपने अग्निजिह्व मुनि को सुख प्रदान किया !! हे राम, इसके बाद आप अगस्त्य मुनि के आश्रम में पधारे !!

मुन्यर्पितायुधोत्तम राम, जात-जटायु-समागम राम

– हे राम, मुनि ने आपको उत्तम अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये !! हे राम, इसके बाद आपकी गीधराज जटायु से भेंट हुई !!

पंचवटी-तट-वासी राम, अनुज-मुक्ति-पथदर्शी राम

– हे राम, (दण्डकारण्य में) आपने पंचवटी नदी के तट को अपना निवास बनाया !! – हे राम, वहाँ आपने अपने भाई लक्ष्मण को मुक्ति-मार्ग का उपदेश दिया !!

शूर्पणखा-श्रुति-पातक राम, कृत-सीता-संकेतक राम

– हे राम, आपने शूर्पणखा के कान कटवा दिये !! हे राम, आपने सीताजी को (भविष्य की लीला का) संकेत दिया !!

खर-दूषणादि-घातक राम, मारीच-मृग-त्रासक राम

– हे राम, आपने खर-दूषण आदि १४००० राक्षसों को मार डाला !! हे राम, आपने मायामृग बने मारीच पर प्रहार किया !!

दशवदन-हृत-प्रियतम राम, जटायु-दत्त-निजाश्रम राम

– हे राम, दशमुख रावण ने आपकी प्रियतमा सीताजी का हरण कर लिया !! हे राम, आपने जटायु को अपना लोक प्रदान किया !!

कबंध-राक्षस-घातक राम, शबरी-बदरास्वादक राम

– हे राम, फिर आपने कबन्ध राक्षस का वध किया !! हे राम, आपने सबरी द्वारा दिये गये बेरों का रसास्वादन किया !!

राम राम जय सीताराम, राम राम जय राजाराम

– हे राम, हे राम, हे सीताराम, आपकी जय हो !! हे राम, हे राम, हे राजाराम, आपकी जय हो !!

।। अथ किष्किन्धाकाण्डम् ।। ४ ।।

पम्पा-तट-विश्रामी राम, ऋष्यमूक-गिरि-गामी राम

– हे राम, आपने पम्पा सरोवर के किनारे विश्राम किया !! हे राम, तुम ऋष्यमूक पर्वत की ओर चल पड़े !!

सुग्रीव-जात-दर्शन राम, हनुमत्कृत-संभाषण राम

– हे राम, वहाँ सुग्रीव ने आपको देखा !! हे राम, हनुमानजी ने आकर आपके साथ वार्तालाप किया !!

हमुमत-स्कन्ध-कृतास्पद राम, सुग्रीव-स्थित-सौहृद राम

– हे राम, तब आप हनुमानजी के कन्धे पर बैठ गये !! हे राम, आपने पर्वत पर जाकर सुग्रीव से मित्रता की !!

कपिवर-वार्ता-श्रावी राम, सप्त-ताल-तरु-भेदक राम

– हे राम, आपने सुग्रीव की सारी बातें सुनी !! हे राम, आपने सात ताड़ के वृक्षों को एक ही बाण से भेद कर दिखाया !!

सुग्रीव-मनोमोहक राम, दुर्मद-वालि-निबर्हक राम

– हे राम, आपने सुग्रीव के मन को मोह लिया !! हे राम, आपने घोर अहंकारी बालि का विनाश किया !!

तारा-तत्व-विबोधक राम, अंगद-सदनुग्राहक राम

– हे राम, आपने तारा को तत्त्वोपदेश द्वारा सान्त्वना प्रदान की !! हे राम, आपने अनुग्रहपूर्वक अंगद को आश्रय दिया !!

कृत-सुग्रीवाभिषेक राम, प्रवर्षणाचल-वासी राम

– हे राम, आपने सुग्रीव का अभिषेक किया !! हे राम, आपने जाकर प्रवर्षण पर्वत पर निवास किया !!

अनुज-कर्म-पथ-दर्शी राम, सीता-वियोग-कातर राम

– हे राम, आपने भाई लक्ष्मण को कर्म का मार्ग बताया !! हे राम, आप सीताजी के वियोग में बड़े कातर हो गये !!

सुग्रीव-कपि-भयंकर राम, जात-कपींद्र-समागम राम

– हे राम, आपने सुग्रीव को भय दिखवाया !! हे राम, उस वानरेन्द्र ने सारे बन्दरों की सभा बुलायी !!

सीता-शुद्धि-कृतोद्यम राम, प्रेषित-कीश-कदंबक राम

– हे राम, उसने सीताजी की खोज के लिये उद्यम किया !! हे राम, उसने वानरों के समुदाय को सब ओर भेजा !!

मारुत्यर्पित-मुद्रिक राम, विपिन-चरत्परिचारक राम

– हे राम, आपने मारुति को अपनी मुद्रिका (अंगूठी) प्रदान की !! हे राम, वे लोग जंगल के मार्ग से होकर चले गये !!

स्वयंप्रभार्चित-सेवक राम, स्वयंप्रभा-करुणाकर राम

– हे राम, स्वयंप्रभा ने (गुफा में) आपके सेवकों का सत्कार किया !! हे राम, स्वयंप्रभा ने कृपा करके उनका मार्गदर्शन किया !!

समुद्र-तट-गत-किंकर राम, विषण्ण-मानस-डिंगर राम

– हे राम, आपके सेवकगण समुद्रतट पर पहुँचे !! हे राम, वहाँ वे वानरगण शोकपूर्ण चित्त के साथ खड़े थे !!

कृत-मति-निश्चिंत्यनुचर राम, सम्पाति-सुखित-डिंगर राम

– हे राम, वहाँ आपके अनुचर निश्चिन्त हुए !! हे राम, सम्पाति ने आपके सेवकों को (सीताजी का संवाद देकर) आनन्दित किया !!

उड्डीन-प्रिय-किंकर राम, राम राम जय सीताराम

– हे राम, आपके प्रिय सेवक (हनुमानजी ने) समुद्र पर से उछाल भरी !! हे राम, हे राम, हे सीताराम, आपकी जय हो !!

।। अथ सुन्दरकाण्डम् ।।५।।

सिन्धु-नीर-तरदनुचर राम, सुरसा-मुख-गत-किंकर राम

– हे राम, आपके अनुचर हनुमानजी समुद्र को पार करने लगे !! हे राम, आपके सेवक सुरसा के मुख में चले गये !!

मैनाकार्चित-सेवक राम, कपि-घातित-जल-सिंहक राम

– हे राम, मैनाक पर्वत ने आपके सेवक की अर्चना की !! हे राम, हनुमानजी ने राक्षसी जल-सिंहिका का वध किया !!

तीर्ण-सिन्धु-परिचारक राम, लंकिन्यसुख-संहारक राम

– हे राम, आपके सेवक समुद्र के पार जा पहुँचे !! हे राम, वहाँ उन्होंने लंकिनी के दु:ख को दूर किया !!

रावण-गृह–चरदनुचर राम, हनुमद्-गोचर-कलत्र राम

– हे राम, आपके सेवक ने रावण के महल में प्रवेश किया !! हे राम, हनुमानजी ने वहाँ सोयी हुई महिलाओं को देखा !!

अशोक-वन-गत-किंकर राम, भंजित-चैत्य-सुमन्दिर राम

– हे राम, आपके सेवक अशोक-वाटिका में गये !! हे राम, वहाँ वे यज्ञशाला-भवन के पास के वृक्ष पर आरूढ़ हो गये !!

मारुति-दृष्ट-प्रियतम राम, दुष्ट-व्यथित-मनोरम राम

– हे राम, वहाँ मारुति ने आपकी प्रियतमा सीताजी को देखा !! हे राम, उन्होंने सीताजी को दुष्ट रावण से व्यथित होते देखा !!

जनक-नंदिनि-श्रुत-कथ राम, सीता-ज्ञात-पदाश्रित राम

– हे राम, उन्होंने जनकनन्दिनी को आपकी कथा सुनायी !! हे राम, श्री सीताजी ने उन्हें आपका पदाश्रित भक्त समझा !!

सीतार्पितांगुलीयक राम, सीताऽश्वासक-सेवक राम

– हे राम, उन्होंने सीताजी को आपकी अंगूठी अर्पित कर दी !! हे राम, आपके सेवक ने सीताजी को आश्वासन दिया !!

कपि-दत्ताभिज्ञानक राम, अशोक-वनिका-भंजक राम

– हे राम, उन्होंने हनुमानजी को (आपके लिये) स्मृति-चिह्न (चूड़ामणि) दिया !! हे राम, उन्होंने (हनुमानजी ने) अशोक-वाटिका को उजाड़ डाला !!

अक्षाद्यसुर-विघातक राम, मेघनादधृत-सेवक राम

– हे राम, उन्होंने अक्षकुमार आदि असुरों को मार डाला !! हे राम, आपके सेवक मेघनाद द्वारा बाँध लिये गये !!

रावण-तत्व-विबोधक राम, नगर-भ्रामित-सेवक राम

– हे राम, उन्होंने रावण को तत्त्वज्ञान देते हुए समझाया !! हे राम, आपके सेवक को सारे नगर में घुमाया गया !!

दीपित-बालधि-किंकर राम, लंका-दाहक-डिंगर राम

– हे राम, आपके सेवक के पूंछ के छोर में आग लगा दी गयी !! हे राम, आपके सेवक ने लंका-दहन कर दिया !!

हनुमद्-वंदित-कलत्र राम, सीताऽश्वासक-किंकर राम

– हे राम, इसके बाद हनुमानजी ने सीताजी की वन्दना की !! हे राम, आपके सेवक ने सीताजी को आश्वस्त किया !!

लंका-निवृत्त-डिंगर राम, हर्षाविष्ट-कपीश्वर राम

– हे राम, आपके सेवक लंका से लौट आये !! हे राम, उस समय हनुमानजी हर्ष से अभिभूत थे !!

वानर-भंजित-मधुवन राम, कपिजात-प्रिय-दर्शन राम

– हे राम, वानरों ने किष्किंधा लौटकर मधुवन को उजाड़ डाला !! हे राम, वानरों को देखकर आप हर्षित हुए !!

हनुमद्-धृत-पद-पंकज राम, श्रुत-सीता-कुशलव्रज राम

– हे राम, हनुमानजी ने आपके चरण पकड़ लिये !! हे राम, आपने उनसे सीताजी का कुशल-समाचार सुना !!

करुणासार्द्र-विलोचन राम, हनुमदविद्या-मोचन राम

– हे राम, सुनकर करुणा से आपके नेत्र डबडबा आये !! हे राम, आपने हनुमानजी की अविद्या को दूर कर दिया !!

राम राम जय सीताराम, राम राम जय राजाराम ।

– हे राम, हे राम, हे सीताराम, आपकी जय हो !! हे राम, हे राम, हे राजाराम, आपकी जय हो !! ❖ **(क्रमशः)** ❖

स्वामी कल्याणानन्द (२)

स्वामी अब्जजानन्द

(स्वामी विवेकानन्द के अल्पावधि जीवन-काल में अनेक नर-नारी उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आये। कुछ युवकों ने उन्हीं के चरणचिह्नों पर चलते हुए त्याग-संन्यास का जीवन भी अंगीकार किया था। प्रस्तुत है स्वामीजी के उन्हीं संन्यासी शिष्यों में से कुछ की जीवन-गाथा। इसे बँगला ग्रन्थ 'स्वामीजीर पदप्रान्ते' से लिया गया है। हिन्दी अनुवाद में कहीं-कहीं अंग्रेजी संस्करण से भी सहायता ली गयी है। – सं.)

कल्याणानन्द का कल्याण-हस्त क्रमशः ऋषीकेश के साधुओं के लिये प्रसारित हुए बिना नहीं रह सका। उन्होंने ऋषीकेश की झाड़ियों तथा अन्य स्थानों की कुटियाओं में भी जाकर साधुओं के लिये दवा-पथ्य आदि की व्यवस्था करना आरम्भ किया। क्रमशः ऋषीकेश में भी पूरे उत्साह के साथ सेवाश्रम की शाखा कार्यरत हो गयी। कर्म की परिधि में वृद्धि होती रही, परन्तु कर्मी के रूप में वे अकेले ही लगे रहे। स्वामीजी की कृपा से कल्याणानन्द अकेले ही मानो सैकड़ों हाथों से कार्य करने लगे। 'प्रबुद्ध-भारत' में ऋषीकेश की शाखा के लिये भी एक अपील प्रकाशित हुआ। इसके १९०२ ई. के जनवरी अंक में प्रकाशित यह आवेदन भी 'In aid of the Sadhus' (साधुओं के सहायतार्थ) शीर्षक के साथ स्वामी विमलानन्द ने ही लिखा था।

सेवाश्रम की ऋषीकेश शाखा की कार्य-विवरणी भी 'प्रबुद्ध-भारत' में नियमित रूप से प्रकाशित हुआ करती थी। यह पहली बार उसके अप्रैल १९०२ के अंक में प्रकाशित हुआ था। इस प्रतिवेदन से ज्ञात होता है कि १९०२ के मार्च में ऋषीकेश के ७० साधुओं की बहिर्विभाग में तथा ७ साधुओं की अन्तर्विभाग में चिकित्सा हुई थी। साथ ही मार्च महीने का हिसाब भी दिया हुआ है –

	रुपये	आना	पाई
पथ्य	२	१५	०
रोशनी	०	३	
रेल-भाड़ा	०	३	३
दवा	१	७	०
विविध	०	५	६
कुल योग	५	१	९

दान के रूप में प्राप्त हुआ था – ५ सेर १२ छटाक चावल, ९ सेर दो छटाक दाल, १८ सेर १२ छटाक गेहूँ, १ सेर ८ छटाक नमक और २ रुपये ९ आने का दूध और वह सब पूरी तौर से खर्च भी हो गया।

फल-फूल-पत्तों से सुशोभित बहु शाखाओं वाले विशाल वृक्ष को ही लोग देखते तथा प्रशंसा करते हैं, परन्तु यह विराट् अभिव्यक्ति जिस छोटे-से बीज में ही सूक्ष्म रूप से छिपी रहती है, वह सदा के लिये लोक-चक्षुओं के परे रह जाता है। यही जगत् का नियम है। कनखल सेवाश्रम चर्चा करते समय उसके प्रारम्भिक दिनों के उपरोक्त विवरणों का सविस्तार उद्धरण निःसन्देह इस नियम का अपवाद है। तथापि कर्तव्य-बोध से ही – अतीत के प्रति वर्तमान के कृतज्ञता-ज्ञापन हेतु, हम अपनी दृष्टि को थोड़ा पुरातन की ओर फिराये बिना नहीं रह सकते।

शीघ्र ही कनखल तथा ऋषीकेश – दोनों सेवा-केन्द्रों को अकेले चला पाना कल्याणानन्द के लिये प्रायः असम्भव हो उठा। परन्तु ग्रीष्मकाल में ऋषीकेश में साधुओं की संख्या काफी कम हो जाती है, क्योंकि उनमें से अधिकांश पहाड़ों में स्थित तीर्थस्थानों में चले जाते हैं। अतएव इस अवकाश के दौरान ऋषीकेश का कार्य कुछ काल के लिये बन्द रखने से भी कोई असुविधा न थी। तदनुसार कल्याणानन्द ने १९०२ ई. के मई में ऋषीकेश-केन्द्र का कार्य कुछ काल के लिये स्थगित रखने और कनखल के केन्द्र पर ही अपना पूरा मनोयोग देने का निश्चय किया। सेवाश्रम के कार्य में जिस प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही थी, इससे उसे स्थायी रूप प्रदान करने हेतु धन तथा कार्यकर्ताओं – दोनों की आवश्यकता महसूस होने लगी। स्वामी विवेकानन्द के आदेश पर ही उन्होंने इस कार्य में लगने का साहस किया था। उनके हृदय में इस बात का दृढ़ विश्वास था कि उन्हीं के आशीर्वाद से कोई भी कार्य अधूरा नहीं रह सकेगा। उधर बेलूड़ मठ में स्वामीजी भी अपने इन अनुगत शिष्य की सेवा-साधना की बातें सुनकर बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे और मठ के अन्य साधुओं के समक्ष उनकी खूब प्रशंसा भी किया करते थे। कल्याणानन्द भी, काफी काल से श्री गुरुदेव का दर्शन न पाने के कारण मन-ही-मन बड़े व्याकुल हो रहे थे। उनका दर्शन करने तथा सेवाश्रम की भावी कर्म-पद्धति के विषय में उनका निर्देश पाने के लिये कल्याणानन्द कुछ दिनों की छुट्टी लेकर मठ चले आये। स्वामीजी भी अपने प्रिय 'कल्याण' को निकट पाकर खूब आह्लादित हुए।

अब एक बार फिर स्वामीजी के प्रत्यक्ष सान्निध्य में रहकर कल्याणानन्द अपने साधन-पथ के लिये संसाधनों का संग्रह करने लगे। साथ ही उन्हें अपने गुरुदेव की प्रत्यक्ष सेवा का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन दिनों स्वामीजी का स्वास्थ्य

ठीक नहीं चल रहा था। परन्तु रुग्ण शरीर के बावजूद वे निरन्तर अपने शिष्यों के कल्याण के चिन्तन में लगे रहते थे। कल्याणानन्द की गुरुभक्ति तथा सेवाभाव असाधारण थे। स्वामीजी की अस्वस्थता के दौरान एक बार बरफ की जरूरत पड़ने पर कल्याणानन्द को ही कलकत्ते जाने का आदेश मिला। उन दिनों छोटी-मोटी चीजों के लिये भी बेलूड़ से कलकत्ते जाना पड़ता था – आवागमन का साधन एक तो नाव था या फिर पैदल ही चलना पड़ता था। कल्याणानन्द कलकत्ते से करीब आधा मन बरफ अपने हाथों में लिये पैदल ही मठ में ले आये। उस दिन शिष्य की इस असाधारण कार्यक्षमता तथा श्रद्धा पर प्रसन्न होकर स्वामीजी ने कहा था, "भविष्य में एक ऐसा दिन आयेगा, जब कल्याणानन्द परमहंस-अवस्था प्राप्त करके धन्य हो जायेगा।" भविष्य में वह दिन सचमुच ही आया था, जब कल्याणानन्द को देखते ही ऐसा प्रतीत होता कि स्वामीजी का वह आशीर्वाद उनके जीवन में फलीभूत हो चुका है। सेवा तथा साधना की समानान्तर धाराओं से उनका जीवन सुसमृद्ध हुआ था। यह अपूर्व समन्वय ही उनके सम्पूर्ण जीवन का वैशिष्ट्य था।

एक दिन स्वामीजी ने कल्याणानन्द को बुलाकर कहा, "देख कल्याण, मेरी क्या इच्छा है – जानता है ! एक ओर ठाकुर का मन्दिर रहेगा, जिसमें साधु-ब्रह्मचारी लोग ध्यान-धारणा आदि करेंगे। फिर जो ध्यान आदि किया उसे व्यावहारिक कार्यों में रूपायित करेंगे।" केदार बाबा (स्वामी अचलानन्द) वहाँ उपस्थित थे। बाद में वे उस दिन की याद करते हुए कहा करते थे, "स्वामीजी कल्याणानन्द को बुलाकर यही समझाना चाहते थे कि व्यावहारिक या कर्म में परिणत वेदान्त ही असल बात है। केवल सैद्धान्तिक वेदान्त नहीं, उसे कार्य रूप में परिणत करना होगा।" कल्याणानन्द की सेवा-परायणता देखकर स्वामीजी ने सेवा को ही वेदान्त के वास्तविक क्रियान्वन के रूप में उनके मन में सुदृढ़ रूप से अंकित करके शिष्य की सेवानिष्ठा को और भी उद्दीपित कर दिया था। कल्याणानन्द के परवर्ती जीवन में स्वामीजी की यह इच्छा यथार्थ रूप से रूपायित हुई थी। ध्यान-भजन तथा नारायण-बोध से नरसेवा ही उनके जीवन का मूल सुर था; और उनके समस्त क्रिया-कलापों, वार्तालापों, आचार-व्यवहार तथा दिनचर्या के माध्यम से वही सुर ध्वनित-प्रतिध्वनित होता रहता था। अस्तु, वे श्रीगुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करके पुनः अपने कर्मक्षेत्र की ओर चल पड़े। मठ के कुछ दिन बड़े आनन्द में बिताने के बाद वे पुनः कनखल की ओर रवाना हुए। स्वामीजी के स्थूल शरीर में उनके साथ यही उनकी अन्तिम भेंट थी। कल्याणानन्द के कनखल चले जाने के मात्र कुछ दिन बाद ही स्वामीजी का महाप्रयाण हुआ। कल्याणानन्द ने भी अपना बाकी जीवन अविच्छिन्न सेवा तथा तपस्या करते हुए कनखल में बिताया था। वे दुबारा बंगाल नहीं लौटे। कुम्भ मेले के संचालन के लिये वे कनखल से केवल दो बार इलाहाबाद गये थे।

कनखल में आकर स्वामीजी के आदर्शों के अनुसार उन्होंने सेवाश्रम को पुनर्गठित करने के कार्य में मनोनियोग किया, परन्तु उपयुक्त सहकारी के अभाव में इतना कठोर शारीरिक परिश्रम उनके लिये कठिन हो उठा। इन्हीं दिनों (१९०३ ई. में किसी समय) स्वामीजी की इच्छा से एक सच्चे सहयोगी आकर कल्याणानन्द से जुड़ गये, ये थे उन्हीं के गुरुभाई स्वामी निश्चयानन्द। तब से लगभग तीस वर्षों से भी अधिक काल तक निश्चयानन्द ही मानो उनके दाहिने हाथ बने रहे। इतने दिनों बाद अब कर्म की गति को एक निर्दिष्ट पथ पर चलाने की सुविधा प्राप्त हुई। सेवाप्राण निश्चयानन्द की सहायता से कल्याणानन्द का हृदय मानो और भी अधिक प्रसारित हो उठा। ऋषीकेश का सेवाश्रम पूरे उद्यम के साथ दुबारा शुरू किया गया। दोनों गुरुभाई भिक्षान्न पर ही जीवन निर्वाह करते थे। उत्तराखण्ड के साधु-समाज में क्रमशः दशनामी सम्प्रदाय के संन्यासी कल्याणानन्द तथा निश्चयानन्द के बारे में चर्चा होनी आरम्भ हुई।

१९०३ ई. के अप्रैल में कलकत्ते के एक उदार सज्जन की आर्थिक सहायता से डेढ़ हजार रुपयों में कनखल के लगभग मध्य भाग में स्थित करीब ५ एकड़ का एक भूखण्ड खरीदा गया। जमीन मिल जाने के बाद भी भवन-निर्माण के लिये कोई संसाधन न था। अतः फूस की तीन झोपड़ियाँ बनवाकर सेवाश्रम को उन्हीं में स्थानान्तरित किया गया। इस बीच एक चिकित्सक के रूप में कल्याणानन्द की ख्याति फैल चुकी थी। वे दीन-दुखियों अस्पृश्य भंगियों की बस्तियों में घूम-घूमकर रोगियों को देखते और उनकी सेवा-सुश्रूषा करते। दोनों संन्यासी साधुओं की कुटिया से लेकर चाण्डालों की झोपड़ी तक सर्वत्र समान हृदय से जाते और स्वयं ही पीड़ितों के मल-मूत्र की सफाई करते, उनके लिये पथ्य बना कर खिलाते और दवा देकर चले आते। पुरातनपन्थी साधु लोग स्वामी विवेकानन्द के इन दोनों शिष्यों की सेवा-परायणता पर मुग्ध तो अवश्य होते, परन्तु उन्हें 'भंगी साधु' का नाम देकर उन्हें थोड़ी हीन दृष्टि से भी देखते। उन लोगों के मतानुसार दूसरों के मल-मूत्र की सफाई करना सर्व-कर्म-त्यागी संन्यासी का कर्तव्य नहीं, अपितु 'भंगी' या मेहतर का कार्य है। वे लोग वेदान्त के सर्वोच्च आदर्शों की बातें केवल मुख से दुहराते रहते थे, उस के किसी व्यावहारिक उपयोग अर्थात् सर्वभूतों में ब्रह्मदृष्टि इन लोगों के लिये एक नितान्त हास्यास्पद बात थी। स्वयं रुग्ण होने पर वे लोग बड़े आग्रह -पूर्वक दूसरों की सेवा ग्रहण करते थे, परन्तु जब दूसरों की सेवा करने की बात आती, तो ये सभी निष्क्रिय 'आत्माराम'

होकर बैठ जाते। अतएव पुरातन-पन्थी संन्यासियों के समाज ने कल्याणानन्द के कार्य की मौखिक प्रशंसा तो की, परन्तु वे लोग कोई आन्तरिक सहानुभूति नहीं दिखाते थे।

ऋषीकेश के कैलाश मठ के मण्डलेश्वर श्रीमत् स्वामी धनराज गिरिजी महाराज[१] दशनामी साधुओं में अति सम्माननीय माने जाते थे। विधि द्वारा घटित एक अलौकिक उपाय के द्वारा इन महामान्य संन्यासी के ही माध्यम से पुरातन-पन्थी दशनामी सम्प्रदाय की उपरोक्त भ्रान्ति सदा-सर्वदा के लिये दूर हो गयी थी। धनराज गिरीजी उन दिनों कनखल के सुरथ गिरि के भवन में निवास कर रहे थे। भजनलाल लोहिया तथा हरसहाय मल शुकदेव दास नामक दो सेठ-मित्रों ने एक दिन गिरिजी को प्रणाम करके हाथ जोड़कर निवेदन किया कि यदि उनकी अनुमति हो, तो वे लोग एक मठ या धर्मशाला बनवाकर उन्हीं के सम्मान में समर्पित करेंगे। इस पर धनराज गिरिजी बोले कि यदि वे लोग सचमुच ही जन-हितार्थ कुछ करना चाहते हैं, तो वे अपनी आँखों से देख आयें कि स्वामी विवेकानन्द के दो संन्यासी शिष्य कनखल में क्या कर रहे हैं। यदि दोनों सेठ विवेकानन्द-शिष्यों के उस कार्य में कुछ सहायता कर सकें, तो वे उसी से सन्तुष्ट होंगे और दाताओं का भी कल्याण होगा। गिरिजी के निर्देशानुसार धर्मप्राण भजनलाल तथा उनके मित्र कनखल में स्वामी कल्याणानन्द तथा निश्चयानन्द का कार्य देखने गये और सचमुच ही आश्चर्यचकित रह गये। भगवत्-प्रेम को मानव-सेवा में उतारकर और मानव-प्रेम को भगवत्-भक्ति में उन्नीत करके वैदिक भारत के आध्यात्मिक आदर्श को कैसे कार्यरूप में परिणत किया जा सकता है, इसे प्रत्यक्ष देखकर दोनों सेठ-मित्र आनन्द तथा विस्मय से विभोर हो उठे। वे समझ गये कि गिरिजी ने क्यों उन लोगों से ऐसा कहा था। तदुपरान्त इन्हीं लोगों की उदारता से कनखल सेवाश्रम के स्थायी भवन का निर्माण सम्भव हो सका था। स्वामी विज्ञानानन्दजी द्वारा बनाये नक्से के अनुसार कल्याणानन्द तथा निश्चयानन्द की व्यक्तिगत निगरानी में १९०४ ई. के अन्त में सेवाश्रम के दो बड़े भवनों का निर्माण पूरा हुआ। १९०५ ई. के प्रारम्भ में एक शुभ दिन सेवाश्रम का कार्य नवीन भवनों में प्रारम्भ हुआ।

वस्तुत: धनराज गिरिजी महाराज की स्वीकृति के फलस्वरूप ही उत्तराखण्ड के पुरातनपन्थी दशनामी साधुओं की प्रशंसायुक्त दृष्टि कल्याणानन्द के कार्य की ओर आकृष्ट हुई थी। दशनामी साधुओं के भण्डारे में सर्वप्रथम इन धनराज गिरिजी ने ही कल्याणानन्द तथा निश्चयानन्द को ससम्मान बुलवाकर अपने निकट आसन प्रदान किया था। इसके बाद सबकी दृष्टि खुल गयी और उन लोगों ने इन नीरव संन्यासी गुरुभाइयों तथा उनके कार्य का वास्तविक महत्त्व समझा।

स्वामीजी ने कल्याणानन्द को निर्देश दिया था कि सेवाश्रम के कर्मियों की जीवन-धारा में ध्यान तथा सेवा एक ही धुरी पर एक साथ ही चलेंगे। यह एक बड़ी उल्लेखनीय बात है कि कनखल सेवाश्रम के निर्माण की परिकल्पना में भी कल्याणानन्द ने किस प्रकार अपने गुरुदेव के इस आदेश को स्मरण रखा था। सामने सेवा-विभाग, उसके पीछे श्रीरामकृष्ण-मन्दिर* और उससे संलग्न ध्यान-कक्ष, ग्रन्थागार तथा साधुओं के लिये निर्जन आवास आदि – यह सब इस बात का सूचक है कि स्वामीजी ने एक दिन कल्याणानन्द को बुलाकर अपने 'व्यावहारिक वेदान्त' के केन्द्र-स्थापना के लिये जो आदर्श रूपरेखा बतायी थी, उसी ने वहाँ साकार रूप धारण किया था। कल्याणानन्द की दूरदृष्टि तथा कर्म-दक्षता के फलस्वरूप कनखल में कर्म तथा उपासना के एक आदर्श परिवेश की सृष्टि हुई थी। वे प्राय: कहा करते, "यद्यपि कनखल सेवाश्रम को मिशन का एक शाखा-केन्द्र कहा जाता है, तथापि यहाँ पर मठ तथा मिशन – दोनों ही विभागों का कार्य चलता है। वर्तमान युग के लिये स्वामी विवेकानन्द के धर्म के आदर्श के रूप में कर्म के साथ ज्ञान, भक्ति तथा योग का समन्वय सम्पादित करने में उनके प्रयासों का कोई अन्त न था। सेवाश्रम के परिवेश को निरन्तर इसी भाव से ओतप्रोत रखने के लिये उन्होंने श्रीरामकृष्ण के अनेक शिष्यों को वहाँ आमंत्रित किया था। उन्होंने स्वयं भी उन लोगों के आध्यात्मिक शक्ति का लाभ उठाया था तथा सेवाश्रम के अन्य कर्मियों को भी इसका सुयोग प्रदान किया था। बीच-बीच में वे स्वामीजी के शिष्यों को भी आमंत्रित करके कनखल लाया करते थे। यहाँ यह विशेष रूप से स्मरणीय है कि १९०१ ई. के अन्त में जब स्वामी शिवानन्दजी उत्तराखण्ड के उन अंचलों में विचरण कर रहे थे, तब कल्याणानन्द के अनुरोध पर सेवाश्रम की उस अंकुर अवस्था में ही वहाँ जाकर कई दिन निवास किया था और कल्याणानन्द के कार्य को खूब प्रोत्साहन प्रदान किया था।

१. स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं भी अपने ऋषीकेश-निवास के दौरान कैलाश मठ के श्रीमत् धनराज गिरिजी के साथ शास्त्र-चर्चा की थी। स्वामी अभेदानन्दजी भी स्वामीजी के गुरुभाई के रूप में अपना परिचय देते हुए उनके पास गये थे और कुछ समय उन विदग्ध संन्यासी के पास शास्त्र-अध्ययन किया था।

* उन दिनों साधु-निवास का ही एक छोटे कमरे का मन्दिर के रूप में उपयोग किया जाता था।

❖ (क्रमश:) ❖

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

२०७. आत्मविश्वास ही सफलता का रहस्य है

कौरव और पाण्डवों में जब सुलह नहीं हो सकी और युद्ध अवश्यम्भावी हो गया, तो दोनों पक्षों ने अपने-अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों को अपनी ओर से लड़ने के लिये आंमत्रित करना शुरू किया। श्रीकृष्ण शल्य के पास गये और बोले, ''मद्रराज, आप जानते हैं कि एक ओर न्याय-पक्ष है और दूसरी ओर अन्याय-पक्ष। दुर्योधन ने पाण्डवों को युद्ध के लिए मजबूर कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि आप युद्ध में पाण्डवों का साथ दें।'' शल्य ने कहा, ''मैंने पाण्डवों की ओर से लड़ने का निश्चय किया था और उन्हें यही बताने जा रहा था कि दुर्योधन ने मार्ग में ही मुझसे अपनी ओर से युद्ध करने का वचन ले लिया। सच्चा क्षत्रिय दिये हुए वचन को निभाने के लिए प्रतिबद्ध रहता है, इसलिये क्षमा करें।'' – ''लेकिन एक काम तो आप कर ही सकते हैं – आप दुर्योधन से कर्ण का सारथी बनाने के लिये आग्रह कीजिये और युद्ध के दौरान कर्ण के समक्ष अर्जुन के शौर्य-पराक्रम का बखान करके उसे निरुत्साहित करते रहिये।'' शल्य श्रीकृष्ण की बात मान गये। युद्ध में शल्य कर्ण का सारथी बने और जब-जब कर्ण का अर्जुन से सामना हुआ, वे कर्ण को अर्जुन की प्रशंसा करते हुए उससे सावधान रहने को कहकर उसे निरुत्साहित करते रहे। परिणाम यह हुआ कि कर्ण का आधा ध्यान अपनी रक्षा में ही बँट जाता था। कृष्ण की यह युक्ति काम आई और अनन्त: कर्ण अर्जुन के हाथों मारा गया।

आत्मविश्वास में महान् शक्ति होती है। आस्था और विश्वास मनुष्य का मनोबल बढ़ाते हैं। निराशा और आत्महीनता के भाव जाग्रत होने पर मनुष्य का धैर्य डगमगाने लगता है और वह किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाता है।

२०८. सन्त कृपा त्रय ताप निवारक

एक बार अकबर बादशाह ने बीरबल से पूछा, ''मैंने सुना है कि आपके हिन्दू धर्म में गुरु और सन्त-महात्माओं को देवता का दर्जा दिया जाता है। आप लोगों की मान्यता है कि उनकी शरण में जाने पर भाग्य भी बदल जाता है। क्या यह सच है और क्या ऐसा सम्भव है?''

बीरबल ने एक पहरेदार से एक कागज और बादशाह की मुहर लाने को कहा। ये चीजें लाने पर उससे कागज पर मुहर लगाने को कहा। पहरेदार द्वारा मुहर लगाने पर बीरबल ने अकबर से प्रश्न किया, ''मुहर के शब्द सीधे अंकित होंगे या उल्टे?'' बादशाह ने तुरन्त जवाब दिया, ''बेशक सीधे ही दिखाई देंगे।'' बीरबल ने कहा, ''मगर मुहर में तो वे उल्टे ही दिखाई देते हैं!'' अकबर बोले, ''बेशक, ऐसा ही है।'' बीरबल ने कहा, ''आपने ठीक फरमाया हुजूर! जिस प्रकार मुहर में लिखे उल्टे शब्द सीधे हो जाते हैं, उसी प्रकार हमारे गुरु तथा सन्त-महात्माओं में दिव्य शक्ति होने के कारण, उनकी कृपा से न केवल पाप-ताप आदि का निवारण हो सकता है, अपितु वे तकदीर को भी उलटने की क्षमता रखते हैं। परन्तु उन पर दृढ़ आस्था और विश्वास होना चाहिए।''

२०९. करो परीक्षा मत ईश्वर की

एक बार सन्त बायजीद बस्तामी खुरासान की यात्रा कर रहे थे। रास्ते में उनके मन में आया – मैं तो खुदा का बन्दा हूँ, इसलिए मेरी जो भी मंशा होगी, खुदा उसे जरूर पूरा करेंगे। उन्होंने एक जगह पड़ाव डाला और खुदा से प्रार्थना की, ''ऐ खुदा, जब तक तू मुझे अपनी हालात से वाकिफ नहीं करेगा, मैं आगे नहीं बढ़ूँगा।'' सन्त तीन दिनों तक वहीं ठहरे रहे। चौथे दिन जब उनके पास से ऊँट पर सवार एक काना आदमी गुजरने लगा, तो उन्होंने उसे रोककर पूछा, ''आप कहाँ से तशरीफ ला रहे हैं और किधर जा रहे हैं? क्या आप यहाँ आराम नहीं फरमायेंगे?'' उस आदमी ने उत्तर दिया, ''आगे न जाने के बाबत आपने खुदा से जिद की है, मैंने नहीं। फिर आप मुझे क्यों रोकना चाहते हैं? अपनी हिफाजत आप खुद क्यों नहीं करते? इसी में आपकी भलाई है।'' उसने ये शब्द कहे और एकदम अदृश्य हो गया।

बायजीद के ध्यान में बात आ गई और उन्हें पछतावा भी हुआ कि वे खुदा से अपनी बात मनवाने के लिये व्यर्थ ही जिद कर रहे हैं। खुदा को यह अच्छा नहीं लगा होगा। उनकी आँखों में आँसू उमड़ आये। उन्होंने खुदा से माफी माँगी और अपने सफर पर आगे बढ़ चले।

भगवान की परीक्षा लेने की चेष्टा निरर्थक है।

पुस्तक-समीक्षा

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

प्रश्नोत्तर दीपमाला (भाग-२)
स्वामी रामानन्दजी सरस्वती
प्रकाशक – मार्कण्डेय संन्यास आश्रम पब्लिक ट्रस्ट पो. ओंकारेश्वर, जिला- खण्डवा - ४५० ५५४ (मध्य प्रदेश) फोन नं. – ०७२८०-२७१२६७, ९८२७८१३७११, ९४२५९३९५६७
पृष्ठ –२७२ मूल्य – ५०/ रुपये

वीतराग ब्रह्मज्ञ ब्रह्मलीन पूज्य स्वामी रामानन्दजी महाराज के महान् व्यक्तित्व के बारे में विवेक-ज्योति के पाठक पूर्व के मेरे द्वारा लिखित दो समीक्षाओं से परिचित हैं। ऐसे महान् संन्यासी का जीवन ईश्वरीय कृपा की सौरभ से सुरभित है। उनका परिव्रजन काल माँ नर्मदा की अनुकम्पा एवं ईश्वर की सानिध्यता से सतत संयुक्त है। अपने जीवन में प्राय: ही महाराज जी परमात्म-प्रसंगातिरिक्त अन्य कोई जागतिक चर्चा नहीं करते थे। ऐसी दिव्य मनोभूमि एवं स्वरूप में वे प्रतिष्ठित रहते थे।

भक्तों, संत-महात्माओं द्वारा विभिन्न स्थानों पर किये गये प्रश्नों का जो सरल सहज समाधान महाराज जी ने दिया था, वह 'प्रश्नोत्तर दीपमाला' (भाग-१) नामक पुस्तक के रूप में गत वर्ष प्रकाशित हुयी थी, जो बहुत ही लोकप्रिय हुई। भक्तों के विशेष आग्रह पर इस वर्ष प्रश्नोत्तर दीपमाला (भाग-२) का बहुत शीघ्र ही प्रकाशन किया गया है।

२७२ पृष्ठ की इस पुस्तक को कुल २४ प्रकार के विषयों में विभाजित किया गया है। जैसे कर्म और गति, भक्ति और उपासना, ज्ञान चर्चा, साधकचर्या, साधना, गुरुतत्त्व, ईश्वरतत्त्व आदि। इन अध्यायों में विभिन्न प्रकार की जिज्ञासाओं का समाधान महाराज जी ने किया है। जैसे किसी ने प्रश्न किया – व्यक्ति कर्तव्य समझकर किसी कार्य में लगता है, परन्तु **करने का अभिमान आ जाता है, इससे कैसे बचें?** महाराज जी उत्तर देते हैं, "अभिमानरहित होकर कर्तव्य कर्म करने का एक यही उपाय है कि अपने कर्म को परमेश्वर से जोड़कर उनकी उपासना रूप से कर्म करे। जो साधक सावधान रहेगा, अपनी सेवा को गुरु और परमेश्वर से जोड़ देगा, उसमें अहंकार नहीं आयेगा।" किसी दूसरे ने प्रश्न किया – **क्या जीव का जन्म-मरण निश्चित है या अपनी इच्छानुसार उसे बदला जा सकता है?** महाराज जी कहते हैं – "जीव का जन्म-मरण निश्चित है, परन्तु यदि कोई अत्यधिक पुरुषार्थ करे, तो उसे बदला भी जा सकता है, मात्र इच्छा से नहीं। मार्कण्डेय जी की आयु १२ वर्ष निश्चित थी, परन्तु अत्यधिक पुरुषार्थ से वे अमर हो गये।"

कर्म के प्रसंग में महाराज जी कहते हैं, "ईश्वरार्पण-बुद्धि से किये गये कर्म को ही श्रेष्ठ कर्मयोग समझना चाहिये। मैं ईश्वर का हूँ, इसलिये ईश्वर के लिये कर्म करना मेरा कर्तव्य है। भक्ति और उपासना के प्रसंग में महाराज जी कहते हैं, जब चातक के समान घनश्याम, शिव या राम किसी भी इष्ट के प्रति आपकी निष्ठा हो जायेगी, तब भगवतप्राप्ति संभव होगी।"

क्या ईश्वर की उपासना से अकाल मृत्यु टल सकती है? महाराज जी कहते हैं – "प्रारब्ध से सब कुछ होता है, यह बात ठीक है, लेकिन ईश्वर की शरण लेने से, वह प्रसन्न हो जायँ, तो प्रारब्ध को भी बदल सकते हैं।"

नवधाभक्ति में एक भाग है चरण सेवा। **जब भगवान के दर्शन ही नहीं हुये, तब चरणसेवा कैसे होगी?**

उत्तर – "भगवान के रूप में माता, पिता और गुरु आपके सामने हैं। भगवद्बुद्धि से उनकी चरणसेवा करो, भगवान की मूर्ति आपके सामने है।"

योग-क्षेम क्या है? महाराज कहते हैं – "साधक की साधना के लिये ज्ञानप्राप्ति के लिये जो आवश्यक है, उसकी प्राप्ति करना ही 'योग' है और उसकी जो अभ्यासजन्य स्थिति है, उसकी रक्षा करना ही 'क्षेम' है।"

विभिन्न प्रसंगों में महाराज जी ने अनेकों लोकोपयोगी परामरार्श दिये, जिन्हें एकत्र उद्धृत किया जा रहा है –

"संतों की कृपा ही भगवान की कृपा है, उसे अलग मत मानो। संतों को भगवान ने ही प्रगट किया। महापुरुषों की कृपा का बड़ा महत्व है, पर वह तभी दीखती है, जब व्यक्ति उसको धारण करने का अधिकारी होता है। संसार में जितने पाप हैं, उसमें परमेश्वर को स्वीकार न करना आधा पाप है और जितने पुण्य हैं, उसमें परमेश्वर को स्वीकार करना सबको मिलाकर आधा पुण्य है। भगवान की आराधना करनी चाहिये, क्योंकि भगवान की आराधना से बढ़कर दूसरा कोई प्रायश्चित नहीं है। जो जड़-चेतन का विवेक करे, उसका नाम 'हंस' है और जिसकी दृष्टि में जड़ रहे ही नहीं, केवल चेतन ही चेतन हो, वह 'परमहंस' है।"

अशान्त मन कैसे शान्त हो? इसके उत्तर में महाराज जी बड़ा व्यावहारिक सुझाव देते हैं –

"मन को शान्त करने का सरल उपाय है कि शान्त वस्तु के साथ इसे जोड़ दिया जाय। शान्तरूप आपका अपना स्वरूप जो परमात्मा है, उसी को लक्ष्य करके व्यवहार करो, तो कौन

आपके मन को अशान्त कर सकता है?

क्रोध को शान्त करने के उपाय के संबंध में महाराज जी कहते हैं – "क्रोध करना भी तो अन्याय है। तुम अन्याय मत करो। न्याय में रहो, तो थोड़ा विचार करने पर क्रोध शान्त हो जायेगा। क्रोध को सहने की शक्ति सबमें है। पैसे के लोभ से व्यक्ति क्रोध को सह लेता है, तो परमार्थ के लोभ से क्यों नहीं सहता। यदि साधक के अन्दर परमार्थ का महत्व ठीक से बैठ जाय, वह सोचे कि क्रोध से हमारा परमार्थ ही बिगड़ जायेगा, तो सह लेगा। व्यक्ति क्रोध को सह लेगा, तभी उसे निवृत्त कर पायेगा, अन्यथा नहीं।"

उपवास फलाहार करें या निराहार? इसके उत्तर में महाराज कहते हैं – उपवास में खान-पान की अपेक्षा मन-इंद्रिय का संयम ही मुख्य रूप से सहायक है। जितना हो सके, भगवान का चिन्तन करें। निराहार रहने के फलस्वरूप मन भगवत्-चिन्तन में रहना चाहिये। यदि निराहार रहने की अपेक्षा फलाहार करने से मन भजन में अच्छा लगता है, तो फलाहार करके उपवास कर सकते हैं। उपवास चाहे निराहार करें या फलाहार करें, उसमें छः सावधानियाँ अपेक्षित हैं – १. उस दिन मिथ्या-भाषण न करें २. क्रोध न करें ३. किसी जीव की हिंसा न करें ४. किसी से उपहार रूप में कोई वस्तु ग्रहण न करें ५. दिन में शयन न करें और ६. ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करें।

इस प्रकार परमार्थ और लोकव्यवहार से संबंधित अनेकों जिज्ञासाओं के समाधान पूज्य महाराज जी ने दिये हैं। इससे भक्तों की शंकायें निर्मूल होकर उनके मन को परमात्मा में प्रतिष्ठित करने में सहायता मिलेगी। कवर के मुखपृष्ठ पर प्रज्वलित दीप हैं, द्वितीय पर पूज्य महाराज जी का भव्य चित्र है और अंतिम कवर पृष्ठ पर ओंकारेश्वर स्थित माँ नर्मदा तट पर विद्यमान मार्कण्डेय संन्यास आश्रम का चित्र है, जिसके रजकण में महाराज जी की अनेकों पावन स्मृतियाँ, विभिन्न दिव्य साधनात्मक गोपनीय परमार्थ प्रसंग अनुस्युत हैं। मैं वीतराग ब्रह्मज्ञ पूज्य महाराज जी के चरणों में प्रणाम करता हूँ और अथक परिश्रम एवं मनोयोग से इस कृति को सुसम्पन्न करनेवाले संपादक मंडल के महात्माओं के प्रति अपनी शुभकामनायें एवं प्रणति निवेदन करता हूँ। हरि ऊँ !!!

श्रीरामकृष्णचरित मानस (प्रथम भाग)
लेखक - स्वामी रामतत्त्वानन्द
प्रकाशक - विवेकानन्द विद्यापीठ,
रामकृष्ण परमहंस नगर, कोटा,
रायपुर - ४९२०१० (छत्तीसगढ़)
दूरभाष - ०७७१-२५७५४३८, २५७५७३४
पृष्ठ - १७८; मूल्य - ५०/ रूपये

भगवान श्रीराम लोकजीवन में मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में विख्यात हैं। उनका शील, सौन्दर्य, बन्धु-प्रजा प्रेम, माता-पिता एवं गुरुजनों के प्रति श्रद्धा तथा माता कैकेयी की आज्ञा तथा पितृ-प्रतिज्ञा-पालन हेतु सर्वोपरि प्रिय अयोध्या राज्य का त्याग कर अनुज और पत्नी के साथ वनवासी जीवन व्यतीत करना लोक जीवन में, लोक संस्कृति में उन्हें सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठि करता है। यहाँ तक कि अपनी एक सामान्य प्रजा के कहने पर लोकाराधन और प्रजारंजन के लिये अपनी प्रिय निर्दोष पत्नी को गर्भावस्था में वनवास दे देते हैं। तब राम लोक जीवन में संवेदना के प्राण बन जाते हैं, जन-जन के आराध्य बन जाते हैं। धनी-गरीब, ज्ञानी-अज्ञानी, शिक्षित-अशिक्षित सबके पूज्य एवं वन्द्य बन जाते हैं। यही उनके जीवन का वैशिष्ट्य है। अन्यथा श्रीराम राजकुल, ज्ञानी, ऋषि तथा शिक्षित विद्वानों के सीमित सीमा में ही सिमट कर रह जाते। जन-मानस में श्रीराम के चरित को व्यापक बनाने का श्रेय जन-भाषा में रचित श्रीरामचरितमानस के रचनाकार गोस्वामी तुलसीदासजी को जाता है।

ठीक वैसे ही भारतीय जनमानस में श्रीरामकृष्ण देव अवतार रूप में प्रथित होने पर भी जन-जन में व्याप्ति का अभी भी अभाव बोध होता है। उनकी त्याग-तपस्या एवं साधना व्यावहारिक जीवन का प्रणयन बंगला, हिन्दी, अँग्रेजी, मराठी, गुजराती तेलगू आदि अन्य प्रमुख भाषाओं में हुआ था, लेकिन रामचरितमानस की लोकप्रचलित भाषा में अब तक अप्राप्त था। उस अभाव की पूर्ति रामकृष्ण संघ के संन्यासी स्वामी रामतत्त्वानन्द जी ने 'श्रीरामकृष्ण चरित मानस' की रचना करके की है।

इस ग्रन्थ से युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव के लोकोत्तर जीवन चरित को जन-जन तक पहुँचाने में सुविधा होगी। लोग इसे उठते-बैठते-चलते, सोते-जागते गुन-गुनाया करेंगे। सामान्य जनता भी श्रीरामकृष्ण की माँ-काली के दर्शन की व्याकुलता, ईश्वर दर्शन की विरह-वेदना, भक्तवत्सलता तथा लोक-शिक्षात्मक जीवन-प्रसंगों से अवगत होगी तथा भगवान के दर्शन की हृदय में व्याकुलता का वर्धन करेगी।

प्रस्तुत ग्रन्थ तीन खंडों में विभाजित है। उसमें का यह प्रथम भाग सद्यः प्रकाशित है। इसके पुस्तक के कवर के अन्तिम पृष्ठ में महाराज जी लिखते हैं –

जगजननी सारदा भवानी।
करहु कृपा माँ जान अज्ञानी।।
तुम शक्ति तुम आदि भवानी।
शारद शेष न सकहिं बखानी।।
रामकृष्ण चरित अति पावन।

(शेष पृष्ठ ९४ पर)

कठोपनिषद्-भाष्य (१४)

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बन्धित गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनको जो मीमांसा की गयी थी, इनमें उन्हीं का संकलन है। श्रीशंकराचार्य ने वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। स्वामी विदेहात्मानन्द द्वारा किया हुआ कठोपनिषद्-भाष्य का सरल अनुवाद प्रस्तुत है। भाष्य में आये मूल श्लोक के शब्दों को रेखांकित कर दिया गया है और कठिन सन्धियों का विच्छेद कर सरल रूप देने का प्रयास किया गया है, ताकि नव-शिक्षार्थियों को तात्पर्य समझने में सुविधा हो। –सं.)

भाष्यम् – अन्यत्र धर्मात् इत्यादिना पृष्टस्य आत्मनः अशेष-विशेषण-रहितस्य आलम्बनत्वेन प्रतीकत्वेन च ओंकारो निर्दिष्टः, अपरस्य च ब्रह्मणो मन्द-मध्यम-प्रतिपत्तृन् प्रति।

भाष्य-अनुवाद – (नचिकेता द्वारा) 'अन्यत्र धर्मात् अर्थात् जो धर्मानुष्ठान से भिन्न है' (१/२/१४) आदि वाक्यों से समस्त विशेषताओं से रहित आत्मा के विषय में पूछे जाने पर, धर्मराज यम ने उसके मन्द उपासकों के लिये तथा मध्यम उपासकों के लिये अपर-ब्रह्म के (ध्यान के) आलम्बन तथा (पूजा के) प्रतीक के रूप में ॐकार का निर्देश किया।

अथ इदानीं तस्य ओंकार-आलम्बनस्य आत्मनः साक्षात्-स्वरूप-निर्दिधारयिषया इदम् उच्यते।

जिस आत्मा का आलम्बन ॐकार है, अब (अगले श्लोक में) उसके साक्षात् स्वरूप के निर्धारण हेतु कहते हैं –

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।१८ (४७)।।

अन्वयार्थ – **विपश्चित्** नित्य चैतन्य सर्वज्ञ है, **न जायते** पैदा नहीं होता, **वा** अथवा **न म्रियते** नष्ट नहीं होता; **अयम्** यह आत्मा **कुतः चित्** किसी भी अन्य कारण से **न** (उत्पन्न) नहीं हुआ है। **न कः चित् बभूव** (इस आत्मा से भी) कुछ उत्पन्न नहीं हुआ है; **अयम्** यह आत्मा **अजः** अजन्मा **नित्यः शाश्वतः** चिरन्तन क्षयरहित **पुराणः** प्राचीन होकर भी नवीन, वृद्धिरहित है; **शरीरे** देह के **हन्यमाने** (शस्त्र आदि द्वारा) मारे जाने पर भी **न हन्यते** विनाश या मृत्यु को नहीं प्राप्त होता।

भावार्थ – (मन्द तथा मध्यम अधिकारी की उपासना हेतु ब्रह्म के प्रतीक तथा वाचक के रूप में ॐकार का उपदेश देने के बाद अब आत्मा का स्वरूप बताया जा रहा है।) यह नित्य चैतन्य सर्वज्ञ है, यह पैदा नहीं होता, अथवा नष्ट नहीं होता; (यह आत्मा) किसी भी अन्य कारण से (उत्पन्न) नहीं हुआ है। (इस आत्मा से भी) कुछ उत्पन्न नहीं हुआ है; यह आत्मा अजन्मा चिरन्तन क्षयरहित प्राचीन होकर भी नवीन, वृद्धिरहित है; देह के (शस्त्र आदि द्वारा) मारे जाने पर भी विनाश या मृत्यु को नहीं प्राप्त होता।

भाष्यम् – न जायते न उत्पद्यते म्रियते वा न म्रियते च उत्पत्तिमतः वस्तुनः अनित्यस्य अनेकाः विक्रियाः, तासाम् आदि-अन्ते जन्म-विनाश-लक्षणे विक्रिये इह आत्मनि प्रतिषिध्येते प्रथमं सर्व-विक्रिया-प्रतिषेधार्थं न जायते म्रियते वा इति।

भाष्य-अनुवाद – वह आत्मा न तो उत्पन्न होता है और न मरता है। उत्पन्न होनेवाले अनित्य वस्तुओं में अनेक प्रकार के विकार (परिवर्तन) आते रहते हैं। यहाँ आत्मा के सन्दर्भ में उसके जन्म-रूप प्रारम्भ तथा मृत्यु-रूप अन्त के रूप में (दोनों तरह के) विकार का निषेध करते हैं। इस प्रकार प्रारम्भ में ही 'न जायते म्रियते वा' कहकर आत्मा में (मध्य के भी) समस्त विकारों का निषेध कर देते हैं।

विपश्चित् मेधावी अपरिलुप्त-चैतन्य-स्वभावत्वात्। किं च, न अयम् आत्मा कुतश्चित् कारणान्तरात् बभूव न प्रभूतः। अस्मात् च आत्मनः न बभूव कश्चित् अर्थान्तर-भूतः।

आत्मा के मेधावी, कभी लुप्त न होनेवाले चैतन्य-स्वभाव के कारण उसे विपश्चित् कहा गया। इसके अतिरिक्त यह आत्मा किसी (अन्य) वस्तु अर्थात् कारण से उत्पन्न नहीं हुआ है; और न ही इस आत्मा से पृथक् होकर कोई अन्य वस्तु उत्पन्न हुआ है।

अतः अयम् आत्मा अजो नित्यः शाश्वतः अपक्षय-विवर्जितः। यो हि अशाश्वतः, सः अपक्षीयते; अयं तु शाश्वतः अतएव पुराणः पुरा अपि नव एव इति। यो हि अवयव-उपचय-द्वारेण अभिनिर्वर्त्यते, स इदानीं नवः, यथा कुम्भादिः (कुड्यादिः); तत्-विपरीतः तु आत्मा पुराणो वृद्धि-विवर्जित इत्यर्थः।

अतः यह आत्मा अजन्मा, नित्य तथा शाश्वत अर्थात् क्षयरहित है। जो अशाश्वत वस्तु है, उसका क्षय होता है, यह (आत्मा) शाश्वत है, अतः पुराण अर्थात् प्राचीन होता हुआ भी नित्य-नवीन है। जो वस्तु, घट आदि के समान, अवयवों में परिवर्तन के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होती है, उसे नवीन कहते हैं; परन्तु आत्मा उसके विपरीत पुराण अर्थात् वृद्धि से रहित है।

यत एवम्, अतः न हन्यते न हिंस्यते हन्यमाने शस्त्रादिभिः शरीरे – तत्स्थः अपि आकाशवत् एव ।। १८ (४७)।।

ऐसा होने के कारण, शरीर के शस्त्र आदि के द्वारा मारे जाने पर भी वह मारा नहीं जाता, क्योंकि वह उस (शरीर) में रहकर भी आकाश के समान उससे अलिप्त रहता है।

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुꣳ हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायꣳ हन्ति न हन्यते ।।१९।।

अन्वयार्थ – **चेत्** यदि **हन्ता** हत्या करनेवाला (आत्मा को) **हन्तुम्** मारने की **मन्यते** सोचता है (और) **हतः** मरनेवाला **चेत्** यदि (आत्मा को) **हतम्** मरा हुआ **मन्यते** समझता है, (तो) **तौ उभौ** वे दोनों ही **न विजानीतः** (आत्मतत्त्व को) नहीं जानते, (क्योंकि) **अयम्** यह आत्मा **न हन्ति** न मारता है (और) **न हन्यते** न (दूसरे के द्वारा) मारा जाता है।

भावार्थ – यदि हत्या करनेवाला (आत्मा को) मारने की सोचता है (और) यदि मरनेवाला (इसे) मरा हुआ समझता है, (तो) वे दोनों ही (आत्मतत्त्व को) नहीं जानते, (क्योंकि) यह आत्मा न मारता है, न (दूसरे के द्वारा) मारा जाता है।

भाष्यम् – एवंभूतम् अपि आत्मानं शरीर-मात्र-आत्मदृष्टिः हन्ता चेद् यदि मन्यते चिन्तयति इच्छति हन्तुं हनिष्यामि एनम् इति यो अपि अन्यो हतः सो अपि चेद् मन्यते हतम् आत्मानं हतो अहम् इति उभौ अपि तौ न विजानीतः स्वम् आत्मानम्; यतः नायं हन्ति अविक्रियत्वात् आत्मनः, तथा न हन्यते आकाशवत्-अविक्रियत्वात् एव ।

भाष्य-अनुवाद – ऐसे स्वरूप वाले आत्मा को भी, यदि कोई शरीर को ही आत्मा समझते हुए मारनेवाला व्यक्ति यह सोचता है कि मैं इसे मारूँगा; और दूसरा, जो मारा जाता है, वह यदि समझता है कि मेरे मारे जाने से आत्मा भी मारा गया – तो वे दोनों ही अपनी आत्मा को नहीं जानते, क्योंकि आत्मा के अविकारी होने के कारण न तो यह किसी को मारता है और आकाश के समान निष्क्रिय होने के कारण इसे कोई मार भी नहीं सकता।

अतः अनात्मज्ञ-विषय एव धर्म-अधर्मादि-लक्षणः संसारः न आत्मज्ञस्य, श्रुति-प्रामाण्यात् न्यायात् च धर्म-अधर्मादि अनुपपत्तेः ।। १९ (४८) ।।

अतः धर्म-अधर्म आदि लक्षणोंवाला यह संसार आत्मज्ञानियों से नहीं, अपितु केवल अज्ञानियों से ही सम्बन्ध रखता है, क्योंकि ज्ञानी के लिये तो श्रुति तथा युक्ति – दोनों प्रमाणों के अनुसार धर्म-अधर्म आदि का कोई आधार ही नहीं है।

भाष्यम् – कथं पुः आत्मनं जानाति इति उच्यते –

भाष्य-अनुवाद – तो फिर इस आत्मा को कैसे जाना जाता है? अब यही बताते हैं –

अणोरणायान्महतो महीया-
नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ।। २० (४९) ।।

अन्वयार्थ – **अणोः** अति सूक्ष्म वस्तु से भी **अणीयान्** सूक्ष्मतर **महतः** विशाल पृथ्वी आदि से भी **महीयान्** विशालतर **आत्मा** आत्मा **अस्य** इस **जन्तोः** जीव के **गुहायाम्** हृदय-गुहा में **निहितः** स्थित है। **धातु-प्रसादात्** धातु अर्थात् मन और इन्द्रियों आदि के शुद्ध होने पर **अक्रतुः** निष्काम व्यक्ति **आत्मनः** आत्मा की **तम्** उस पूर्वोक्त **महिमानम्** महिमा को **पश्यति** अनुभव करता है (और इसके फलस्वरूप) **वीतशोकः** दुःख-शोकों से मुक्त हो जाता है।

भावार्थ – अति सूक्ष्म वस्तु से भी सूक्ष्मतर, ब्रह्माण्ड से भी विशालतर आत्मा इस जीव के हृदय-गुहा में स्थित है। धातु अर्थात् मन और इन्द्रियों आदि के शुद्ध होने पर निष्काम व्यक्ति आत्मा की उस पूर्वोक्त महिमा को अनुभव करता है (और इसके फलस्वरूप) दुःख-शोकों से मुक्त हो जाता है।

अणोः सूक्ष्मात् अणीयान् श्यामाक-आदेः अणुतरः । महतो महत्-परिमाणात् महीयान् महत्तरः पृथिवि-आदेः । अणु महत् वा यत्-अस्ति लोके वस्तु, तत् तेन एव आत्मना नित्येन आत्मवत् सम्भवति, तत्-आत्मना विनिर्मुक्तम् असत् सम्पद्यते । तस्मात् असौ एव आत्मा अणोरणीयान् महतो महीयान्, सर्व-नाम-रूप-वस्तु-उपाधिकत्वात् ।

यह आत्मा श्यामाक (सावाँ अन्न) आदि सूक्ष्म वस्तुओं से भी सूक्ष्मतर है और पृथ्वी आदि महान् वस्तुओं से भी महत्तर है। ब्रह्माण्ड में जो भी सूक्ष्य या विशाल वस्तुएँ हैं, वे उसी नित्य आत्मा के द्वारा ही सत्तावान होती हैं। आत्मा से पृथक् हो जाने पर वे असत् हो जाती हैं। अतः समस्त नाम, रूप तथा वस्तुएँ जिस आत्मा की उपाधियाँ हैं, वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर तथा विशाल से भी विशालतर है।

स च आत्मा अस्य जन्तोः ब्रह्म-आदि-स्तम्ब-पर्यन्तस्य प्राणि-जातस्य गुहायां हृदये निहितो आत्मभूतः स्थित इत्यर्थः।

और वह आत्मा – ब्रह्मा से लेकर तिनके तक समस्त प्राणियों के हृदय (गुहा) में आत्मा के रूप में स्थित है।

तं आत्मानं दर्शन-श्रवण-मनन-विज्ञान-लिङ्गम्, अक्रतुः अकामः दृष्ट-अदृष्ट-बाह्य-विषय-उपरत-बुद्धिः इत्यर्थः, यदा च एव, तदा मन-आदीनि करणानि धातवः शरीरस्य धारणात् प्रसीदन्ति इति ।

जिस आत्मा का दर्शन श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के द्वारा होता है। अक्रतुः कामनारहित व्यक्ति – जिसकी बुद्धि दृष्ट तथा अदृष्ट सभी प्रकार के विषयों से ऊपर उठ चुकी है, जब ऐसी (विरक्ति की) अवस्था होती है, तब मन आदि करण (धातु) शान्त हो जाते हैं।

एषां धातूनां प्रसादात् आत्मनः महिमानं कर्म-निमित्त-वृद्धि-क्षय-रहितं पश्यति अयम् अहम् अस्मि इति साक्षात् विजानाति, ततः वीतशोकः भवति ।। २० (४९) ।।

शरीर को धारण करने से (मन आदि) करणों को धातु कहते हैं। इन धातुओं की शान्तता के फलस्वरूप व्यक्ति उस आत्मा की महिमा को देखता है, जिसमें क्रिया के द्वारा वृद्धि-क्षय नहीं होता; और उसे 'यह मैं हूँ' – इस प्रकार अपना स्वरूप जानकर वह शोकरहित हो जाता है। ❖ (क्रमशः) ❖

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य

प्रारब्धं पुष्यति वपुरिति निश्चित्य निश्चलः।
धैर्यमालम्ब्य यत्नेन स्वाध्यासापनयं कुरु।।२७९।।

अन्वय – प्रारब्धं वपुः पुष्यति – इति निश्चित्य निश्चलः धैर्यम् आलम्ब्य यत्नेन स्व-अध्यास-अपनयं कुरू।

अर्थ – प्रारब्ध ही शरीर का पोषण करता है – ऐसा निश्चय करके अविचल धैर्य का आलम्बन करके अपने 'अध्यास' (देहादि में अहंता के बोध) को दूर करो।

नाहं जीवः परं ब्रह्मेत्यतद्व्यावृत्तिपूर्वकम्।
वासनावेगतः प्राप्तस्वाध्यासापनयं कुरु।।२८०।।

अन्वय – 'न अहं जीवः परं ब्रह्म' इति अतत्-व्यावृत्ति-पूर्वकम् वासना-वेगतः प्राप्त-स्व-अध्यास-अपनयं कुरु।

अर्थ – "मैं जीव नहीं, अपितु पर ब्रह्म हूँ" – इस प्रकार तत् (ब्रह्म) से भिन्न अनात्म वस्तुओं का निषेध करके, (पूर्व जन्मों की) वासनाओं (संस्कारों) के वेग के फलस्वरूप प्राप्त हुए अपने 'अध्यास' (देहादि में अहंबोध) को दूर करो।

श्रुत्या युक्त्या स्वानुभूत्या ज्ञात्वा सार्वात्म्यमात्मनः।
क्वचिदाभासतः प्राप्तस्वाध्यासापनयं कुरु।।२८१।।

अन्वय – श्रुत्या युक्त्या स्व-अनुभूत्या आत्मनः सार्वात्म्यम् ज्ञात्वा क्वचिद्-आभासतः प्राप्त-स्व-अध्यास-अपनयं कुरु।

अर्थ – श्रुति (वेदान्त-वाक्य), युक्ति तथा अपनी अनुभूतियों के द्वारा सब को अपना आत्म-स्वरूप जानकर, (जाग्रत, स्वप्न आदि) किसी भी काल में आभास रूप में प्राप्त अपने 'अध्यास' (देहादि में अहंबोध) को दूर करो।

अनादानविसर्गाभ्यामीषन्नास्ति क्रिया मुनेः।*
तदेकनिष्ठया नित्यं स्वाध्यासापनयं कुरु।।२८२।।

अन्वय – मुनेः अस्ति अन्-आदान-विसर्गाभ्यां ईषत् क्रिया न अस्ति। नित्यं तत् एकनिष्ठया स्व-अध्यास-अपनयं कुरु।

अर्थ – मननशील ज्ञानी में, (निरहंकारिता के कारण) विषयों के ग्रहण तथा उनके त्याग की वृत्ति न होने से, उनमें कोई कर्मप्रयास नहीं रहता। (अतः) निरन्तर ब्रह्म में एकनिष्ठा के द्वारा अपने 'अध्यास' (देहादि में अहंबोध) को दूर करो।

* पाठभेद – अन्नादानविसर्गाभ्यामीषन्नास्ति क्रिया मुनेः।

तत्त्वमस्यादि-वाक्योत्थ-ब्रह्मात्मैकत्व-बोधतः।
ब्रह्मण्यात्मत्व-दार्ढ्याय स्वाध्यासापनयं कुरु।।२८३।।

अन्वय – 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योत्थ ब्रह्म-आत्मैकत्व-बोधतः ब्रह्मणि आत्मत्व-दार्ढ्याय स्व-अध्यास-अपनयं कुरु।

अर्थ – 'तत्त्वमसि' तथा अन्य महावाक्यों से उत्थित होनेवाले, ब्रह्म तथा आत्मा के एकत्व-बोध द्वारा, ब्रह्म में अपने स्वरूप-बोध की दृढ़ता के लिये अपने 'अध्यास' (देहादि में अहंबोध) को दूर करो।

अहंभावस्य देहेऽस्मिन्निःशेषविलयावधि।
सावधानेन युक्तात्मा स्वाध्यासापनयं कुरु।।२८४।।

अन्वय – अस्मिन् देहे अहं-भावस्य निःशेष-विलय-अवधि सावधानेन युक्तात्मा स्व-अध्यास-अपनयं कुरु।

अर्थ – इस (स्थूल-सूक्ष्म) शरीर में जो अहंता है, उसके पूर्णतः नाश हो जाने तक, सावधानीपूर्वक आत्मा से युक्त रहकर अपने 'अध्यास' (देहादि में अहंबोध) को दूर करो।

प्रतीतिर्जीवजगतोः स्वप्नवद्भाति यावता।
तावन्निरन्तरं विद्वन्स्वाध्यासापनयं कुरु।।२८५।।

अन्वय – विद्वन्, यावता जीव-जगतोः प्रतीतिः स्वप्नवत् भाति, तावत् निरन्तरं-स्व-अध्यास-अपनयं कुरु।

अर्थ – जब तक जीव तथा जगत् की अनुभूति स्वप्नवत् (मिथ्या) प्रतीत होने लगे, तब तक हे विद्वान्, अपने 'अध्यास' (देहादि में अहंबोध) को दूर करो।

निद्राया लोकवार्तायाः शब्दादेरपि विस्मृतेः।
क्वचिन्नावसरं दत्त्वा चिन्तयात्मानमात्मनि।।२८६।।*

अन्वय – निद्रायाः लोक-वार्तायाः शब्दादेः अपि विस्मृतेः क्वचित् अवसरं न दत्त्वा, आत्मनि आत्मानं चिन्तय।

अर्थ – निद्रा द्वारा, लोगों के साथ चर्चा द्वारा तथा शब्द-स्पर्श आदि विषयों द्वारा भी, अपने स्वरूप को भूलने का जरा भी अवसर न देकर, अपने हृदय में आत्मा का ध्यान करो।

मातापित्रोर्मलोद्भूतं मलमांसमयं वपुः।
त्यक्त्वा चाण्डालवद्दूरं ब्रह्मीभूय कृती भव।।२८७।।

अन्वय – माता-पित्रोः मल-उद्भूतं मल-मांसमयम् वपुः चाण्डालवत् दूरं त्यक्त्वा, ब्रह्मीभूय कृती भव।

अर्थ – अपने माता-पिता के मल से उत्पन्न होनेवाले इस मल-मांसमय (घृण्य) शरीर को चाण्डाल के समान दूर त्यागकर, ब्रह्म के साथ अपनी एकता की अनुभूति करके कृतकृत्य (धन्य) हो जाओ।

* यह तथा अगले कुछ श्लोक अध्यात्मोपनिषद् (५-१०) में भी प्राप्त होते हैं।

❖ (क्रमशः) ❖

विश्व-भ्रातृत्व-दिवस – अध्यक्षीय सम्बोधन

पिछले अंक में विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर (छ.ग.) में ११ सितम्बर, २०११ 'विश्व-भ्रातृत्व-दिवस' मनाये जाने का समाचार हम प्रकाशित कर चुके हैं। उक्त सभा की अध्यक्षता करते हुए नारायणपुर रामकृष्ण मिशन आश्रम के सचिव स्वामी स्वामी व्याप्तानन्द जी ने कहा था, "११८ साल पहले इसी शिकागो धर्म-महासभा में स्वामी विवेकानन्द जी बम की तरह फट पड़े थे। यह अधिवेशन १७ दिन चला था। स्वामीजी के 'बहनो और भाइयो' सम्बोधन का सभी श्रोताओं पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। सबमें ब्रह्मभाव विद्यमान है। आत्मज्ञ महापुरुष उस भाव की अनुभूति कर सकते हैं। स्वामीजी एक ब्रह्मज्ञ पुरुष थे। उनकी बातों में वही शक्ति भरी थी, इसीलिये उनके उक्त सम्बोधन से सबको अपनत्व का बोध हुआ। सबको लगा कि स्वामीजी मेरे अपने भाई हैं, मुझसे ही बातें कर रहे हैं। सबको ऐसी ही अनुभूति हुई थी। उनके तत्त्वज्ञान की बातें सुनने को वहाँ के लोग व्यग्र रहा करते थे। वहाँ स्वामीजी को मिलते हुए सम्मान को देखकर एक अमेरिकी महिला ने मन-ही-मन सोचा था, "यदि तुम इस मान-सम्मान के आक्रमण को झेल सके, तो तुम्हें भगवान ही समझूँगी।" स्वामीजी आजीवन शुद्ध-पवित्र रहकर जन-प्रवाह प्रशंसा तथा निन्दा के आक्रमण को झेलते रहे। श्रीरामकृष्ण ने स्वामीजी को उपदेश देने का अधिकार सौंपा था। उन्होंने लिख दिया था – 'नरेन शिक्षा देगा।' ठाकुर ने उन्हें अपना सब कुछ देकर, स्वयं फकीर होकर नरेन्द्र से स्वामी विवेकानन्द बनाया था। स्वामीजी का प्रभाव १५०० वर्षों तक चलता रहेगा।"

रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावप्रचार परिषद छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश की सभा सम्पन्न हुयी

रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित रामकृष्ण-विवेकानन्द-भाव-प्रचार परिषद की दो दिवसिय सभा का आयोजन श्रीरामकृष्ण आश्रम, बगीचा, छत्तीसगढ़ में किया गया। बेलूड़ मठ से पर्यवेक्षक के रूप में आये स्वामी रघुनाथानन्द जी, छत्तीसगढ़-मध्यप्रदेश भावधारा परिषद के अध्यक्ष और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी और भावधारा परिषद के उपाध्यक्ष तथा रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के सचिव स्वामी व्याप्तानन्द जी ने मार्गदर्शन किया। भाव-प्रचार परिषद के संयोजक श्री हिमाचल मढ़रिया ने बताया कि इस सभा में २० केन्द्रों में से ११ केन्द्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया और ३ केन्द्रों ने अपनी रिपोर्ट भेजी थी। भावप्रचार परिषद के बिलासपुर, अम्बिकापुर, भिलाई, और बगीचा केन्द्रों के ४ संन्यासियों ने भाग लिया। ३० प्रतिभागियों ने मिलकर नैतिकतापूर्वक कार्य करने एवं आध्यात्मिक जीवन के विकास पर गहन चिन्तन-मनन एवं मन्थन किया।

देवघर में शिक्षा-प्रदर्शनी

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, वैद्यनाथ देवघर (बिहार) के प्रांगण में गत् २८ से ३० अगस्त, २०११ तक शिक्षा-प्रदर्शनी लगायी गयी थी, जिसका उद्घाटन रामकृष्ण मिशन, नरोत्तम नगर (अरुणाचल प्रदेश) के सचिव श्रीमत् स्वामी ईशात्मानन्द जी महाराज ने किया। इस अवसर पर विवेकानन्द सभागार में विज्ञान संगोष्ठी का आयोजन भी किया गया।

फीजी में सार्वजनिक ध्यान-मन्दिर

गत २१ जुलाई, २०११ को रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के महासचिव श्रीमत् स्वामी प्रभानन्दजी महाराज ने रामकृष्ण मिशन, फिजी द्वारा निर्मित सार्वजनिक ध्यान-मन्दिर का उद्घाटन किया। ❑❑❑

पृष्ठ ९० का शेषांश

मंजुल मंगल अति मन भावन ।।
रामकृष्ण जय जग आधारा ।
तुम बिन नाथ भुवन अँधियारा ।।
काली काली भक्त का रे मन धर तुम ध्यान ।
हिय संशय सब नाशहीं रामकृष्ण भगवान ।।

इस प्रकार के सरस दोहों और चौपाइयों से युक्त यह ग्रन्थ है। अब वह दिन दूर नहीं, जब जन-साधारण के साथ-ही-साथ शिक्षित विद्वद्वृन्द भी इस मनोहर मंजुल सरस सरल सहज गाथा को गुन-गुनाकर संकीर्तन और भजन करने से अपने आपको रोक नहीं पायेंगे।

पुस्तक का कवर पृष्ठ बहुत ही आकर्षक है। मुख्य पृष्ठ पर गंगाजी और दक्षिणेश्वर काली मंदिर का शिव-मंदिरों के साथ चित्र है। नीचे ठाकुर की जन्मभूमि कामारपुकुर का उनका निवास भवन का चित्र है। अंतिम कवर पृष्ठ पर बेलूड़ मठ स्थित श्रीरामकृष्णदेव के मंदिर का चित्र है। यदि प्रसंगानुसार अन्य लोगों और स्थानों के चित्र भी दिये गये होते, तो और अच्छा हुआ होता। इस अनुपम कृति के लिये मैं महाराज जी के चरणों में प्रणाम करता हूँ। ❑❑❑

श्रीरामकृष्ण मठ
मयलापुर, चेन्नै (त.ना.)
६०००४

श्रीरामकृष्ण का १७५ वाँ जन्मतिथि-समारोह

(२२ से २६ फरवरी, २०१२)

चेन्नै का श्रीरामकृष्ण मठ, ऐसा विलक्षण आध्यात्मिक केन्द्र है, जो श्रीरामकृष्ण की दिव्य सहधर्मिणी श्री सारदा देवी के चरणस्पर्श से धन्य हो चुका है। श्रीरामकृष्ण के एक प्रमुख शिष्य तथा महान् आध्यात्मिक विभूति स्वामी रामकृष्णानन्द ने इस मठ की स्थापना की थी। श्रीरामकृष्ण के कुछ अन्य शिष्यों ने भी इस मठ में पधार कर इसे धन्य बनाया है।

श्रीरामकृष्ण की १७५ वीं वर्षगाँठ के अवसर पर श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नै ने विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया है। इनमें से एक कार्यक्रम हैं – 'घर-घर में सत्संग'। इसके तहत साप्ताहिक पाक्षिक या मासिक सत्संगों के द्वारा भक्तों के घरों में आध्यात्मिकता का परिवेश बनाया जा सकता है। ऐसे २०० से भी अधिक सत्संग सम्पन्न हो चुके हैं।

२२ से २६ फरवरी, २०१२ के दौरान चैन्नै मठ में आयोजित होने वाले आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के साथ ही इस समारोह का समापन होगा। श्रीरामकृष्ण के १७५ वें जयन्ती समारोह के साथ ही चैन्नै मठ में निर्मित सार्वभौमिक मन्दिर की स्थापना के भी १२ वर्ष पूरे हो जायेंगे।

फरवरी २०१२ में श्रीरामकृष्ण की १७५ वीं जयन्ती का समारोह सम्पन्न होने वाला है, इसलिये यह एक ऐसा उपयुक्त अवसर होगा, जब हम उनके सार्वभौमिक मन्दिर तथा उसके परिसर को एक बार पुन: रंग-रोगन आदि से सुसज्जित करें, उसे भव्य रूप प्रदान करके उसे एक बार पुन: श्रीरामकृष्ण को समर्पित करें। उपरोक्त कार्य पर लगभग ८२ लाख रुपयों का व्यय होने की सम्भावना है, जिसका विवरण इस प्रकार है –

१. सार्वभौमिक मन्दिर की मरम्मत –	रु. ०७ लाख
२. सार्वभौमिक मन्दिर का रंग-रोगन –	रु. ०६ लाख
३. सौ वर्ष पुराने मन्दिर का जीर्णोद्धार –	रु. १७ लाख
४. पुराने मन्दिर का रंग-रोगन –	रु. ०३ लाख
५. आश्रम की चहारदीवारी की मरम्मत –	रु. ०८ लाख
६. प्रांगणों तथा सड़कों का पुनर्निर्माण –	रु. २२ लाख
७. विविध खर्च –	रु. ०४ लाख
८. जयन्ती कार्यक्रम –	रु. १५ लाख
कुल योग	रु. ८२ लाख

उपरोक्त कार्यों के लिये हम आपसे आर्थिक सहायता का अनुरोध करते हैं। श्रीरामकृष्ण की १७५ वीं जयन्ती के पुण्य अवसर पर आप भी इन कार्यक्रमों में हाथ बँटाइये।

चेक या ड्राफ्ट "Sri Ramakrishna Math, Chennai" के नाम बनवाकर उपरोक्त पते पर भेज दें, मठ को दिये गये दान इनकम-टैक्स अधिनियम की धारा ८०-जी के अन्तर्गत करमुक्त है।

दान की राशि इन्टरनेट @ के माध्यम से भी भेजी जा सकती है, जिसमें "Sri Ramakrishna 175" कैटेगरी को चुनना होगा। राशि को बैंक द्वारा स्थानान्तरित करने के लिये हमारा IFSC/Swift code (कोड) का विवरण जानने के लिये हमारे साथ ई-मेल द्वारा सम्पर्क करें। विदेश से भी आनेवाले दान का स्वागत किया जायेगा।

श्रीरामकृष्ण की कृपा हम सब पर बनी रहे।

(स्वामी गौतमानन्द)
अध्यक्ष

Phone : (044) 24621110
Email: mail@chennaimath.org
Website : www.chennaimath.org

RAMAKRISHNA MISSION ASHRAMA
MALDA - 732101, WEST BENGAL, INDIA

PHONE NO. 03512-252479

Appeal for the construction of a Charitable Dispensary

Date : 12.09.2011

Dear Sir / Madam,

Our Ashrama is a branch of Ramakrishna Mission, Belur Math, Howrah. We are working for the last 86 years in this small town of North Bengal.

We serve the uneducated, illiterate, ailing people, flood-draught affected people 9irrespective of caste, creed and religion as per the ideas and ideals of Ramakrishna-Vivekananda.

Our Ashrama runs a high shcool (H.S.+2), a Kindergarten & a Primary school for middle class people. Two rural primary schools are being run for tribal childern who are first generation learners. In addition to above, six free coaching Centres are being run by us in remote village areas.

We run an allopath and a homoeopath dispensary for poor slum dwellers and we have a mobile medical service for rural poor ailing people. About thirty thousand poor people are served free of cost in our medical units.

We distribute regularly school uniform, dhoti-saree, blankets, food-packets etc. to needy village people.

We are going to construct one Dispensary Building which will cater Homeopathy, Alopathy Medicine, Eye, ENT, Dental, Paediatric, Gynecology, Pathologcal Tests etc. The cost of construction of the above building will be around Rs. 60.00 lacs (Sixty lakhs).

We request you to lend a helping hand to make this humble project a success.

I may mention here that donations of Rs. 1 lac and more [in memory of your relative etc.] the donor's name will be displayed in a suitable place in the ground floor through marble plaques.

All donations for this noble cause are exempted from Income Tax u/s 80G of Income Tax Act. 1961. A/c. payee Cheque / Draft may be drawn in favour of Ramakrishna mission Ashrama, Malda.

With Namaskar,

Your sincerely,

Swami Parasharananda

Secreatary